* श्री *

महात्मा विदुर

लेखक :—

निर्बल सेवक और गृहलक्ष्मीके भूतपूर्व सम्पादक,

पं० नरोत्तम व्यास।

प्रकाशक :—

रिखबदास बाहिती,

प्रोप्राईटर:—"दुर्गा प्रेस" और

आर० डी० बाहिती एण्ड को०,

नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।

द्वितीय बार | सन् १९२३ | मूल्य १॥) रेशमी २)

प्रकाशक :—
रिखबदास वाहिती,
आर० डी० वाहिती एण्ड को०,
नं० ४, चोरबगान, कलकत्ता।



मुद्रक—
रिखबदास वाहिती
"दुर्गा प्रेस"
नं० ४, चोरबगान,
कलकत्ता।

समर्पण

शताधिक पुस्तक प्रणेता, सनातन-धर्म-पताका

सम्पादक, पूज्यपाद पितृव्यदेव

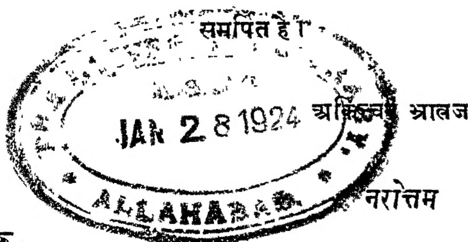
ऋषिकुमार

पं० रामस्वरूपजी शर्मा गौड़

महोदयके करकमलोंमें

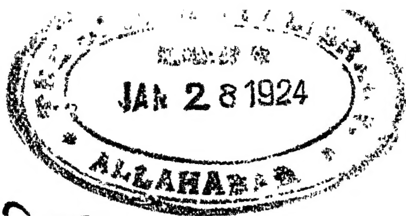
लेखककी यह भेंट सभक्ति

समर्पित है ।



अकिंचन भ्रातज

नरोत्तम



भूमिका।

भारत-भूमि रत्न-प्रसवा है। इसने पूर्व कालमें व्यास, भीष्म, भीम, अर्ज्जुन, द्रोण प्रभृति कितने ही ऐसे रत्न प्रसव किये हैं, जो बेजोड़ हैं। इस भूमण्डलका कोई भी भाग, उनसे बढ़कर तो दूरकी बात है, बराबरी करनेवाला जोड़ा भी पैदा न कर सका है। ऐसे ही रत्नोंमेंसे एक इस ग्रंथके चरित्र नायक महात्मा विदुर थे। महात्मा विदुरका जीवन पद पद पर नीतिकी सार गर्भित बातें, आदर्श नीतिपूर्ण घटनायें तथा चरित्रोन्नतकर महत्वपूर्ण उपदेशोंसे ही परिपूर्ण है। अतएव, इसमें कोई सन्देह नहीं, कि इस जीवनीको पढ़कर वर्त्तमान कालके भारतवासी अपनी दशा बहुत कुछ सुधार सकते हैं।

महाभारत आदर्श चरितोंकी खान है, उसके रचयिता व्यासजीने संसारके यावत विषय उसमें भर दिये हैं; परन्तु इस कलिकालकी कपोल कल्पित कथाओंके कठोर चक्रमें पड़नेवालोंके लिये महाभारत एक भयानक पोथा, और उसकी उपदेशप्रद कथायें कर्णकटु तथा अस्वाभाविकताकी खान हैं। अतः उसपर दृष्टि डालना भी उन्हें असह्य मालूम होता है। यही कारण है, कि वर्तमान नवयुवक भारतीय रीति-नीतिको भूलते ही जाते हैं।

बड़े हर्षकी बात है, कि पूर्वके व्यासजीके उसी उद्देश्यको लक्ष्यमें रखकर सुहृद्वर श्रीयुक्त पण्डित नरोत्तम व्यासजीने, बड़े परिश्रम और अध्यवसायसे यह जीवनी रचकर हिन्दी-संसारको अपना ऋणी बनाया है। आशा है, कि हिन्दी पाठक इस जीवनीको पढ़कर व्यासजीके इस परिश्रमको सार्थक करेंगे।

विनीत—

चन्द्रशेखर पाठक।

वक्तव्य



महात्मा विदुरका जीवन-चरित ज्ञान, भक्ति, धर्म और नीति प्राण भारतीय नवयुवकोंके और उन नवयुवकोंके जो शीघ्र ही जीवन संग्राममें प्रवेश करनेवाले हैं बड़े कामकी चीज है; इसी लिये हमारा यह प्रयास है। चरित्र-चित्रणकी सामग्रीका हमने मूल महाभारत, काशीरामके बंगला पद्य भारत, भक्तमाल आदि-से संग्रह किया है। इसलिये उसमें मूल महाभारतके पाठक भेद पायेंगे। परिशिष्ट या नीति भागको पहले हमने भारतीय विद्यालयोंके विद्यार्थियोंके सुभीतेके लिये श्लोकके भावोंपर लक्ष्यकर लिखा था, पीछे हिन्दीके प्रसिद्ध लेखक मित्रवर पं० श्रीचन्द्रशेखरजी पाठकके अनुरोधसे उसमें मूल नीति भी दे दी गयी। इससे विद्वान् पाठक शब्दार्थ खोजने जाकर यत्र तत्र असफल होंगे। उन्हें केवल वहाँ नीति श्लोकोंका भाव ही मिलेगा।

अन्तमें हम प्रियवर पाठकजी और इसके उत्साही प्रकाशक-को उनके परिश्रमानुसार धन्यवाद दे, पाठकोंसे अनुरोध करते हैं कि वे उसे अपने एक परिचितकी भें[illegible] समझकर अपनायें।

नरोत्तम व्यास।

दूसरा संस्करण।

आदर्श-ग्रन्थमालाका यह दूसरा पुष्प हमने बहुत डरते डरते पाठकोंकी सेवामें उपस्थित किया था। क्योंकि हमें भय था; कि जहाँ पाठक सरस साहित्य-प्रवाहका आनन्द उपभोग कर रहे हैं, वहाँ यह नीरस, केवल नीतिमय विषय शायद उन्हें रुचिकर न प्रतीत हो। परन्तु प्रसन्नताकी बात है, कि हमारा वह भय कोरा भय ही रह गया और पाठकोंने इस ग्रन्थपर अपनी पूर्ण सहानुभूति और अशेष कृपा दृष्टि रखी। इसीका यह फल है, कि आज इस ग्रन्थका यह दूसरा संस्करण पाठकोंकी सेवामें उपस्थित है।

इस दूसरे संस्करणमें बहुत कुछ परिवर्त्तन और परिवर्द्धन करनेकी अभिलाषा थी, परन्तु कई ऐसे कारण आ पड़े कि वह अभिलाषा कुछ दिनोंके लिये, मनकी मनमें ही रह गयी। अतः पुस्तक उसी रंग रूपको लेकर फिर आप लोगोंकी सेवामें उपस्थित होती है। हाँ, केवल कलेवर बदल दिया गया है।

आशा है, पाठकगण पूर्वकी भाँति ही इसको अपनानेकी चेष्टाकर वाधित करेंगे।

विनीत—

रिखबदास बाहिती

प्रकाशक—

महात्मा विदुर ।

प्रथम परिच्छेद ।

समस्त संसारमें एकमात्र भारतवर्षको ही प्रकृतिदेवीके लीला-निकेतन होनेका गौरव प्राप्त है। इसका प्रत्येक स्थान सृष्टिकर्त्ताके ऐश्वर्य्य और माधुर्य्यसे परिपूर्ण है। इसके सिवा यह महापुरुषोंका जन्मस्थान, धर्म्मवीर और कर्म्मवीरोंका कर्म्म-क्षेत्र, विलासी व्यक्तियोंका विलासभवन और प्रमोदकानन है। इसमें तपस्वोके लिये तपोवन और सज्जनोंके लिये अनेकों तीर्थ हैं। सारांश कि—भारतवर्षकी समता करनेवाला संसारमें कोई देश नहीं है। इसका वैभव, इसका गौरव और इसकी महिमा सर्वत्र अतुलनीय है। अस्तु,

अबकी तो बात जाने दीजिये। किन्तु जब यहाँ सत्य सनातन-धर्म्मका प्रवल पराक्रम था, जब देवर्षि, महर्षि और देव-द्विजगणों की समतान वेद-ध्वनिसे चारो दिशायें प्रतिध्वनित रहती थीं, जब क्षत्रिय लोग समरक्षेत्रोंमें जा जाकर अपने शौर्य्य, वीर्य्य और प्रवल पराक्रमका परिचय देकर अखाड़ोंमें अपनी मल्लक्रीड़ा दिखा दिखाकर दर्शकोंको विस्मयान्वित करते और विजयमालाको गलेमें धारणकर अपनेको सौभाग्यशाली समझते थे, उस समय इसकी शोभा-श्री दूसरी ही थी। उस समयकी सम्पदाको देख

इन्द्रपुर निवासी देवगण भी मनुष्य-स्वरूप धारणकर भारतवासी कहलानेके लिये लालायित रहते थे। किसी ओर भी अन्याय और अधर्मका नाम न सुना जाता था। सत्ययुग, त्रेता और द्वापरमें इसकी चरमोन्नति हो चुकी थी। प्रत्येक चक्रवर्त्ती सम्राट्ने अपने शरीरकी परवाह न कर, इसका उत्कर्ष साधन किया था।

द्वापरकी बात सुनिये। उस समय भारतमें चन्द्रवंशियोंका राज्य था। देशमें वे ही चक्रवर्त्तीके नामसे प्रसिद्ध थे। उन्होंने भारतके हितकल्पमें जैसी जैसी साधनायें कीं, वैसी और किसीने भी की या नहीं—यह कहना कठिन है। उनमें भी महाराजा भरतका नाम परम स्मरणीय है। उनके शासनकालमें भारतकी अवस्था जैसी सुव्यवस्थित रही, वैसी शायद ही किसीके राजत्वमें रही हो। वे इतिहास-प्रसिद्ध राजा दुष्यन्त और रानी शकुन्तलाके पुत्र थे।

इनके बाद वीर विक्रमसिंह महाराज शान्तनुने भी भारतवर्षको अद्वितीय बनानेमें कोई कोर-कसर नहीं रखी थी। ऐतिहासकोंने तो आपके राजत्वकालको "अद्वितीय" कहकर प्रशंसा की है। इस पुस्तकमें हमें आपके ही वंशके एक महात्माकी जीवन-कथा लिखनी है। पाठक, आपके नामको न भूलें। अस्तु

चन्द्रवंशावतंस नृपतियोंकी प्राचीनतम राजधानी हस्तिनापुर ही महाराज शान्तनुकी राजधानी थी। महाराज शान्तनु राजसिंहासनपर बैठते ही सन्तान-पालनकी भाँति प्रजापालन और

राज्यका शासन करने लगे थे। उन्होंने भगवती गङ्गा-देवीको अपनी पत्नी बनाया था। गङ्गा देवीसे सात पुत्र हुए थे। किन्तु उसने सातोंहीको गङ्गामें प्रवाहित कर दिया था। जब आठवाँ पुत्र हुआ और गंगा उसे भी जल-प्रवाहित करने चली तो महाराज शान्तनु पुत्र-मोहसे अधीर हो उठे और गंगासे कहा,—"सुभगे! तूने अबतक देखते देखते मेरे सात पुत्रोंको गंगामें प्रवाहित कर दिया और मैंने "तेरे किये कामोंमें दखल न दूँगा" इस प्रतिज्ञामें बंधे रहनेके कारण मुंहसे एक वार भी तुझे इस दुष्कर्मसे निवारित नहीं किया। किन्तु अब यह नाशकारी काण्ड नहीं देखा जाता। इसलिये तू भले ही अप्रसन्न होकर कहीं चली जा, पर इस बच्चेको जल-प्रवाहित न कर सकेगी।" यह सुन गंगा देवी अपने एकमात्र पुत्र देवव्रतको शान्तनुके हाथोंमें सौंप उन्हें परित्याग करके चली गयीं। यही शान्तनु देवव्रत आगे भीष्मदेवके नामसे प्रसिद्ध हुए।

पूर्ण मनुष्य-जीवन स्त्री और पुरुष दोनोंके सहधर्म्मका नाम है। अतएव सांसारिक प्रत्येक कार्य्यमें दोनोंकी ही समान आवश्यकता होती है। क्या गृहधर्म-पालन और क्या राज्यधर्म-पालन दोनों ही उक्त शक्तियोंकी अपेक्षा रखते हैं। तदनुसार महाराजा शान्तनु विपत्नीक होकर भी कर्त्तव्य पालन एवं स्वराज्य तथा स्वजन परिवेक्षणके कार्य्यमें पराङ्मुख नहीं हुए। उन्होंने एक दिन भी प्रजारञ्जन, स्वधर्म-पालन, पापियोंको दण्डदान और शरणागतोंके परित्राण कार्य्यमें अवहेला नहीं की। तथापि एक

पङ्खवाले पक्षीका गगन-विहार और एक पहियेके रथका पथ-भ्रमण सर्वथा असम्भव है। महाराजा शान्तनुने भी यह सोचकर, कि—विपत्नीक व्यक्तिका संसार-धर्म परिरक्षण और गार्हस्थ परिचालन सर्वथा असम्भव है, द्वितीय विवाह करनेका संकल्प किया।

एक दिनकी बात है, कि वे शिकार खेलते खेलते वनमें बहुत दूर जा निकले। वहाँ पहुंचते ही उनकी दृष्टि एक अत्यन्त सुन्दरी कन्यापर पड़ी, जो गंगामें पड़ी, एक नावपर बैठी हुई थी। राजाने इसीको अपनी द्वितीय पत्नी बनाना चाहा। तदनुसार वे उसका और उसके पिताका नामधाम मालूम कर घर लौट आये और घर आकर अपने विश्वस्त मन्त्रीको उस कन्याके पिताके पास विवाहका प्रस्ताव करनेके लिये भेजा।

उक्त कन्याका नाम सत्यवती और उसके पिताका नाम धीवरराज दासराज था। दासराजने राजाके प्रस्तावके उत्तरमें कहा,—“यदि महाराजा शान्तनु मेरी कन्याको पटरानीके रूपमें ग्रहणकर उससे उत्पन्न हुए पुत्रोंको ही अपना उत्तराधिकारी बनाना स्वीकार करें, तो मैं राजाज्ञाका पालन करनेमें समर्थ हो सकता हूं।” महाराज अपने सर्वगुण-सम्पन्न देवव्रत जैसे सुपुत्रके रहते इस शर्त्तका पालन कैसे कर सकते थे? अतएव दुःखित होकर उन्होंने सत्यवतीके पानेकी आशा परित्याग कर दी।

समयानुसार यह सब बातें देवव्रतके कानोंतक भी पहुंची। पिता द्वितीय विवाह करना चाहते हैं, यह जानकर वे परम प्रसन्न

हुए। एवं स्वयं धीवरराजके घर पहुंचकर महाराजा शान्तनुके अभिप्रायका पुनः ज्ञापन और सत्यवतीके साथ उनके विवाहका प्रस्ताव उठाया। किन्तु धीवर राजाने पहलेकी भाँति देवव्रतको महाराज शान्तनुका पुत्र अतएव भारत-साम्राज्यका भावी उत्तराधिकारी जान, प्रस्तावका प्रत्याख्यान कर दिया। देवव्रत पिताकी प्रसन्नताके लिये राज्य-ग्रहण और पाणिग्रहण न करेंगे—इसकी प्रतिज्ञा करते हुए बोले,—"आज मैं अपने पूज्यपाद पिताके विवाहके लिये इस बातको सबके सामने स्वीकार करता हूं, कि आजसे भारत राज्यपर मेरा कोई भी अधिकार नहीं है। मेरी इस प्रतिज्ञा के साक्षी तुम, मेरे साथ आये हुए ये राज-पुरुष और साक्षात् सूर्य्य भगवान् हैं।"

देवव्रत या भीष्मदेवकी इस प्रतिज्ञासे सहमत होकर धीवर राजाने अपनी कन्या सत्यवतीको महाराज शान्तनुके साथ विवाह कर देनेके लिये भीष्मदेवको समर्पित कर दिया। भीष्मदेव सत्यवतीको हस्तिनापुरमें ले आये। पिता पुत्रके साहसपर प्रसन्न हुए। उन्होंने सत्यवतीके साथ यथारीति विवाह कर लिया।

कुछ दिनों बाद सत्यवतीके गर्भसे चित्रांगद और विचित्रवीर्य्य नामके दो पुत्र उत्पन्न हुए। महाराज शान्तनु यथा समय भीष्मदेव, चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य्यको छोड़ परलोक वासी हुए। अविवाहित चित्राङ्गद सिंहासनपर आरोहण करते ही किसी गन्धर्वके हाथसे मारे गये। अतः विचित्रवीर्य्य पैतृक राज्य-सिंहासनके अधिकारी और भारत-साम्राज्यके अधिपति

हुए। उन्होंने अपना विवाह काशीराजकी पुत्री अम्बिका और अम्बालिकाके साथ किया था। राजा विचित्रवीर्य्य अत्यन्त विलासी और स्त्रैण थे। महाभारतमें लिखा है, चन्द्रवंशमें उनके जैसा इन्द्रिय-परायण व्यक्ति पहले कभी पैदा नहीं हुआ था। अस्तु, इसी चरित्र-दोषसे वे अल्पावस्थामें ही कराल कालके गालमें जा गिरे। निःसन्तान अवस्थामें पत्नी अम्बिका और अम्बालिका तथा माता सत्यवतीको अकूल शोकसागरमें निमग्न कर वे संसार-त्यागी हो गये।

देवी सत्यवती पुत्रकी अकाल मृत्यु और राजसिंहासनका कोई उत्तराधिकारी न होनेसे नितान्त शोकाकुल हुईं। उन्होंने निरुपाय हो भीष्मदेवको ही राज्य-सिंहासन ग्रहण करनेके लिये अनुरोध किया। स्वाधीनचेता, दृढ़प्रतिज्ञ, स्थिरबुद्धि और पुरुषसिंह भीष्म दृढ़ताके साथ विमाताको सम्बोधन करते हुए बोले,—"माता! मैंने आपके विवाहके समय यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं जीवनभर अविवाहित रहूँगा और राज्य ग्रहण न करूंगा। अतः उस प्रतिज्ञाका पालन या पूर्ण करना मेरा परमधर्म है। आप मुझसे ऐसा अनुचित अनुरोध न करें।" अनन्तर व्यास देवकी कृपासे विचित्रवीर्य्यकी दोनों पत्नियाँ पुत्रवती हुईं। धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरने जन्म ग्रहण किया।

यद्यपि विदुरका जीवन और जन्म अन्धकारोसमाच्छन्न है, तथापि यह विश्वसतः कहा जा सकता है, कि उन्होंने राजपुत्रोचित शिक्षा प्राप्त की थी। राजघरानेमें धृतराष्ट्र, पाण्डु और

विदुरमें कोई भी भेद नहीं था। विदुरजीने वेद, वेदांग व्याकरण, ज्योतिषशास्त्र; तथा धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्रका भ‹ प्रकारसे अध्ययन किया था। धनुर्वेद और आयुर्वेदमें भी उनक अगाध पाण्डित्य था। वे राजनीति और समाजनीतिशास्त्रके परम पण्डित थे। उनकी शिक्षा और दीक्षाका कार्य्य महामति भीष्मकी ही देख-रेखमें हुआ था। भीष्मदेवने धृतराष्ट्र और पाण्डुको भी यद्यपि उक्त विषयोंकी समुचित शिक्षा दिलायी थी, किन्तु विदुरने उक्त दोनों भाइयोंकी अपेक्षा शीघ्र और अच्छी पारगामिता प्राप्त कर ली थी। सारांश, कि भीष्मदेवकी ऐका-न्तिक चेष्टाके फलसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुर तीनों ही यथेष्ट शिक्षित और प्रत्येक विषयके अच्छे पण्डित हो गये थे। समझ दार और वयःप्राप्त हो जानेपर पाण्डुको राज्यसिंहासन मिला धृतराष्ट्र बड़े होते हुए भी जन्मान्ध होनेके कारण राज्य लाभसे वञ्चित रहे। पाण्डुने राजसिंहासनपर पैर रखते ही [illegible] विदुरको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। पाण्डु महाभारतमें भीष्मदेवके हाथोंमें समस्त कर्त्तृत्वभार सौं[illegible]लमें अनेक शकुन राजत्व करने लगे। भीष्मदेवने हीदी[illegible]ते वक्त हस्तिनापुरमें नाना पृथा तथा माद्रीके साथ, बालक, जन्मते ही ऐसा रोया, जैसे सुदेव राजाकी कन्या[illegible]की उस रुदन-ध्वनिको सुनकर गिद्ध पेचक विदुरका विवाह[illegible] तथा बिल्लियोंने ऐसा विकट चित्कार किया,

कि उससे सारे नगरमें एक भयानक भीतिका संचार हो उठा। उस समय जो वायु बही, वह अत्यन्त गरम और दशों दिशाओंको जला देनेवाली थी। मेघकी गर्जना और भीषण वर्षासे प्रलयकी सूचना होती थी। इन सब लक्षणोंको देख महात्मा भीष्म, महात्मा विदुर और कृपाचार्य्य—ये सब बड़े चिन्तित हुए।

सर्व हितैषी और दूरदर्शी विदुरने तत्काल भाई धृतराष्ट्रके पास जाकर इन सब अपशकुनोंकी बात कही और बोले—"महाराज! मुझे और भीष्म आदि समस्त गुरुजनोंको इस कौरव-कुलका अन्त अत्यन्त अन्धकारमय देख पड़ रहा है। इन अपशकुनोंका कोई उचित प्रायश्चित भी नहीं देख पड़ता। यदि इस शिशुका अभी त्याग कर दिया जाये, तो भले ही कुलका कल्याण हो सके। ज्योतिषीगण कहते हैं, यह बालक अपने आदमियोंके लिये यमके समान होगा, इसकी वृद्धिके साथ राज्य और राज-परिवारके अनन्त दुःखोंकी वृद्धि होगी। अतएव यदि आप कुल और परिवारका कल्याण चाहते हैं, तो अपने सौ पुत्रोंमेंसे इस एक पुत्रका त्याग कर दीजिये। क्योंकि जो पुत्र कुलके लिये अंगार स्वरूप है, जिसकी वृद्धिसे कुलका क्षय होनेकी सम्भावना है, जो अधर्मका प्रतिपादक होगा; उसको पालना सर्प पालनेकी भाँति है, नीतिकार कहते हैं—

> "त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
> त्यजेद् पौरहिते ग्रामं पृथिव्यार्थे पुरं त्यजेत्॥

अर्थात् न्यायी राजाका कर्त्तव्य है, कि कुलकी कल्याण-

कामनासे प्रेरित हो, यदि देखे कि एक व्यक्तिसे कुलका अमंगल होगा, तो उसे तत्क्षण त्याग दे। यदि देखे, कि कुलसे ग्रामभरका अनिष्ट हो रहा है, तो उस कुलको त्याग दे। यदि देखे, कि ग्रामसे नगरभरका कल्याण हो रहा है, तो उस ग्रामको त्याग दे और यदि एक नगरसे सारे संसारका अनिष्ट हो रहा है, तो उस नगरको ही त्याग दें ? एवं यदि संसारको अपनेसे कष्ट पहुंच रहा हो तो इस संसारको ही त्याग दे।" यह नीति अतीव कल्याण कारिणी है। अतएव आप पूर्व्वापर ध्यान देकर अपने इस ज्येष्ठ पुत्रको त्यागकर समस्त वंशकी रक्षा करें!"

विदुरने जो कुछ कहा, सत्य कामना और राजाकी हित-कामनासे प्रेरित होकर कहा था। वे योगी थे। उनके दिव्य चक्षु कौरव कुलके भविष्यको बड़ी भयङ्कर दशासे घिरा हुआ देख रहे थे। किन्तु अन्धराज धृतराष्ट्र पुत्र-स्नेहमें ऐसे अन्धे हो रहे थे, कि उन्होंने विदुरकी उक्त कल्याण वाणीपर तनिक भी कर्णपात नहीं किया।

धृतराष्ट्रने भले ही कर्णपात न किया हो, किन्तु पाठक अपने मनमें सोचकर देखें, कि आजकल कितने ऐसे भृत्य हैं; जो अपने प्रभुके आगे ऐसे साहसका परिचय प्रदान कर सकते हैं। विदुरने जो कुछ कहा, किसी द्वेषसे प्रेरित होकर नहीं कहा था। आखिर उनकी वाणी एक दिन सत्य हो साबित हुई थी। प्रसिद्ध कुरुक्षेत्रका समर उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। महाराज दुर्य्योधन अपना और देशका अनिष्ट साधनकर अनन्तधामको चले गये हैं,

यद्यपि उनका पंचभौतिक शरीर पाँच भूतोंमें जा मिला है, किन्तु भारतके कोटि कोटि लोग आज भी उनकी कलङ्क-गाथाका गान कर रहे हैं। जो उनका चरित्र पढ़ता है, जो उनके किये कर्मोंकी आलोचना करता है, वह उतना ही उनको धिक्कार देता है। उन्होंने एकके कहने और एकके लिये पाप नहीं किये, उनको प्रलोभनमें डालनेवाले, पापपथपर अग्रसर करनेवाले अनेक थे, किन्तु कलङ्ककी कालिमा एकमात्र उन्हींके मुँहमें पोती गयी। उन्होंने अपने कुलका क्षय किया सो तो किया ही, साथ ही सारे भारतकी शोभा और सम्पद्को पापका आश्रय लेकर नष्ट-भ्रष्ट कर डालना भी एकमात्र उन्हींका काम था। अतिलोभ, अति उद्धता, अति अवज्ञा और अत्यन्त द्वेषका ऐसा भीषण परिणाम होना एक अवश्यम्भावी फल है। इस फलका विष जिसकी जीभसे लग जाता है, उसे वह खिला खिलाकर मार डालता है। जिसके पास भारतभरका साम्राज्य, अतुल लक्ष्मी, सौ भाई, भीष्म, कर्ण और द्रोण जैसे संरक्षक तथा शल्य जैसे मित्र थे, जिनके वीरत्वकी संसार भरमें समता नहीं, वह इन सब लोगोंके साथ-धन, वैभव और मानको नष्टकर संसारके मुखसे धिक्कार खाता हुआ बड़ी बुरी दशासे यमलोक गया था और असहाय पाण्डव एकमात्र सत्यधर्मको अपना अवलम्ब निर्द्धारितकर प्रभुमें अचल और अटल भक्ति रखते हुए उसपर विजयी हुए थे।



द्वितीय परिच्छेद ।

पाण्डवगण उपयुक्त शिक्षा पाकर पर्य्याप्त शिक्षित हो गये हैं। उन्होंने गुरुकुलके समस्त बालकोंमें उच्चासन अधिकृत कर लिया है। उनके सौजन्य और सत्स्वभावको देखकर नागरिकोंमें महाराजा पाण्डुकी सुजनता और सद्व्यवहारकी बात जागरित हो उठी है। वे पाण्डवोंको सम्पूर्ण गुणसम्पन्न देख परस्परमें कहते हैं,—"पाण्डव लोग गुणवान्, बलशाली और कृत-विद्य हैं। अब युधिष्ठिर वयःप्राप्त अतएव राज्य लाभके उपयुक्त अधिकारी हैं।" सभास्थान, उत्सव-समागम जहाँपर भी लोग एकत्रित होते हैं, वहाँ युधिष्ठिरकी राज्यप्राप्ति विषयक चर्चा होती है। लोग उनके सम्पूर्ण गुणोंकी आलोचना और प्रशंसा करते एवं सभी एक स्वरसे यह कहते हैं, कि धृतराष्ट्र अन्धे होनेके कारण पहले ही राज्यलाभ न कर सके थे। यह राज्य महाराजा पाण्डुका है, अतएव न्यायतः युधिष्ठिर ही उसके प्रकृत अधिकारी हैं। वे वेदज्ञ, वीर, धार्म्मिक, कृपालु और युद्ध-विद्यामें विशारद हैं। उनके अन्य भाई भी गुणवान् और बलशाली हैं। हम सब युधिष्ठिरको ही राज्य-सिंहासनपर बैठा देखकर प्रसन्न और सुखी होंगे। क्योंकि महाराजा पाण्डुके पाँचों पुत्र पञ्चरत्नसे बढ़कर हैं।"

ये सब बातें धीरे धीरे धृतराष्ट्र और दुर्य्योधनके कानोंतक भी पहुंचीं। धृतराष्ट्रने लोगोंकी इस अभिलाषाको परिवर्तित करनेके

लिये मन्त्री कणिकका आश्रय लिया। दुर्मति दुर्य्योधन इन सब बातोंको सुन भीमसेनको अतिशय बलशाली, अर्जुनको वीराग्रगण्य देख अनुतापकी अग्निमें जलने लगा। बस यहींसे आत्म-विरोध या आपसकी फूटका सूत्रपात हुआ। स्वजन यज्ञकी सूचना हुई। दुर्य्योधन अब सूर्य्यपुत्र कर्ण और सुबलतनय शकुनिके साथ पाण्डवोंका विनाश करनेमें प्रवृत्त हुआ। म्लेच्छाधम पुरोचन भी इस कुमन्त्रणामें सम्मिलित किया गया। अब पाण्डवोंके लिये नित्य नयी नयी आपत्तियोंकी सृष्टि होने लगी। किन्तु महात्मा विदुरकी नीति और सुमन्त्रणाओंके कारण उनका स्वरूप भीषण न होने पाता था। उनकी चेष्टाओंसे सब आपत्तियोंका सहज हीमें नाश हो जाता। अन्तमें दुर्य्योधन, कर्ण, शकुनी और पुरोचन सब मिलकर अन्धराजके पास गये और कहा,—"महाराज! आपको पाण्डवोंका भय दिनरात कष्ट देता है। आप इस कष्टसे बचनेके लिये किसी कौशलसे उन्हें वारणावतमें भेज दीजिये। ऐसा होनेपर सारा भय दूर हो जायगा। सहजहीमें कार्य्य सिद्धि और राज्य निरापद् हो जायगा।"

पहले तो अन्धराज ऐसे पापकार्य्यके करनेमें हिचके, किन्तु बादको उनके मुहमें भी लोभसे पानी भर आया और वे इन आततायियोंके प्रस्तावके अनुसार कार्य्य करनेमें तत्पर हो गये। धृतराष्ट्रने पहले कहा था—"पाण्डवगण भुवन-विख्यात बलशाली, धर्म-परायण और गुणवान् हैं। सारी प्रजा उन्हींके पक्षमें है।

समर्थ होंगे। इस लिये उन्हें वारणावत भेजना कोई सहज काम नहीं है।" किन्तु दुर्य्योधनने कहा-"पिताजी! आप इस आशङ्काको हृदयमें स्थान न दीजिये। पाण्डवोंको वारणावतमें भेजते ही हमारा राज्य प्रतिष्ठित हो जायगा। उनके यहाँसे बाहर पैर रखते ही मैं मन्त्री, सेना और समस्त प्रजाको अपने वशमें कर लूंगा, फिर तो पाण्डव लोग किसी तरह भी कुन्तीके साथ हस्तिनापुरमें प्रवेश न कर सकेंगे। विशेषकर राज्यमें हमारा प्राधान्य हो जानेपर सब वशमें हो जायेंगे।"

धृतराष्ट्रने कहा—"वत्स! तुमने जिस कौशलसे प्रजाको वशमें करनेकी बात सोची है, समय-समयपर मैंने भी उसका आश्रय लिया है। किन्तु भविष्यत्‌के परिणामका विचारकर मैंने कभी उसमें हस्तक्षेप नहीं किया। अब जैसी तुम्हारी इच्छा हो, वैसा करो। मैं तुम्हारे प्रस्तावके अनुसार पाण्डवोंको वारणावत भेजनेमें सम्मत हूं।"

दुरात्मा दुर्य्योधनकी आकांक्षा पूर्ण हो गयी। अन्धराजको जो भय और भावनाएं दिनरात परेशान किया करती थीं, वे दूर हो गयीं। धूर्त्त दुर्य्योधनने पिताके हृदयमें भी आत्म-विरोधका बीज बो दिया। अन्धराज धृतराष्ट्रको प्रलोभनके पथमें लाकर उसने चक्रान्त जालमें जकड़ लिया। उनके पास जो नित्य दो एक साधु और सज्जनोंका समागम होता था, वह अब बन्द हो गया। अन्धराज दिन रात द्वेष और ईर्षाके वशवर्ती हो शान्तिकी आशासे, सुखकी आशासे अशान्ति सागरमें डूब गये।

इधर दुर्य्योधनने पुरोचनको बुलाकर कहा—"पुरोचन ! तुम आज ही बारणावत नगरको जाओ। वहाँ जाकर नगरके बाहर बहुतसा रुपया खर्चकर एक उत्तम और सुन्दर चतुःशाला बनाओ। सन, राल आदि अग्नि-दीपक वस्तुओं द्वारा उसकी चिनाईका मसाला तयार किया जाये। घी, तेल चर्बी और बराबर परिणामकी लाखके साथ मिट्टी मिलाकर दीवारोंपर पलास्तर हो। सन, घी, तेल और राल तथा ऐसे ही शीघ्र जल उठनेवाले मसालेसे काठकी लिपाई हो एवं इस बातका ध्यान रखा जाये, कि पाण्डव या उसमें रहनेवाला अन्य कोई व्यक्ति विशेष विशेष परीक्षायें करके भी उस घरका अग्निसंदीपनत्व या शीघ्र जल उठना न जान सके। उस मकानके बन जानेपर पाण्डवगण अपनी माताके साथ वहाँ जायेंगे। तुम उनको यथेष्ट सम्वर्द्धनाके साथ उस घरमें ठहरा देना, उन सबके लिये सुन्दर आसन, रमणीय शय्या और बढ़ियासी गाड़ीका प्रबन्ध कर देना। जब देखो, कि पाण्डव लोग निःसन्दिग्ध चित्तसे उसमें रह रहे हैं, तो दो तीन दिन बाद उन सबके रातको सुखसे सो जानेपर घरके दर्वाजे पर आग लगा देना। इससे समस्त पाण्डव और उनकी माता जलकर यमराजके यहाँ चले जायेंगे। हमारा राज्य निष्कण्टक हो जायेगा। प्रजा समझेगी, कि पाण्डव दैव-दुर्विपाकसे ही आग लग जानेके कारण जलकर मर गये हैं। अतएव वह कोई उपद्रव भी न कर सकेगी। इस प्रकार कौशलसे हमारा कार्य्य भी सिद्ध हो जायेगा और हमलोग लोक-निन्दासे भी बचेंगे।"

पुरोचन इस प्रकार सिखा-पढ़ाकर वारणावत भेज दिया गया और वह दुर्य्योधनके आदेशानुसार काम करने लगा।

इधर धृतराष्ट्रने एक दिन पाण्डवोंको बुलाकर कहा—"प्रिय भ्रातृजो! तुम लोग यदि वसन्तोत्सव देखनेकी आकांक्षा करते हो तो परम रमणीय वारणावत नगरको चले जाओ। एवं सेवकोंके साथ देवी कुन्तीको भी अपने संग लेते जाओ। वहाँपर तुम सबके सुख और स्वच्छन्दताके लिये विशेष प्रबन्ध कर दिया गया है।"

बुद्धि-शक्ति सम्पन्न युधिष्ठिरने अपने श्रद्धेय चाचाका सच्चा अभिप्राय समझ लिया; तथापि उन्होंने किसी प्रकारका सन्देह प्रकट न कर—कोई भी प्रतिवाद न कर, आज्ञाको शिरोधार्य्य कर लिया। वे अपनेको सहाय-हीन जान कर बोले—"तात! आपका आदेश मान्य है। हम उसका कभी लंघन न करेंगे और अभी वारणावतको माता समेत प्रस्थान करते हैं।"

पाण्डवोंने ज्येष्ठ तात धृतराष्ट्रको प्रणामकर राजदरबारसे विदा ली और माता कुन्तीके पास जाकर वारणावत जानेकी बात कही। माताने भी प्रस्तावके सम्बन्धमें कोई आपत्ति नहीं की। वे भी जानेके लिये तयार हो गयीं। इस प्रकार युधिष्ठिरादि पाँचों भाई माता और परिजनोंके साथ वारणावत जानेके लिये तयार हो गये। सामान ठीक किया गया और यथा समय कर्त्तव्य निष्ठ समस्त पाण्डव अनुचर तथा सहचरोंके साथ वारणावतको चल दिये। पुरवासियोंको जब मालूम हुआ, कि

पाण्डव लोग वारणावतको अन्धराजकी आज्ञासे जा रहे हैं, तब तो वे धैर्य्यहीन होकर क्रोध और क्षोभसे अन्धराजको भला-बुरा कहने लगे। बुद्धिमान् विदुर भी धृतराष्ट्रके गूढ़ अभिप्रायको समझ गये और अवसर पाकर पाण्डवोंके पीछे ही पीछे वे भी बारणावतको चल दिये। बहुत दूर जाकर उन्होंने म्लेच्छ भाषामें युधिष्ठिरको सम्बोधन करके कहा—"प्रिय पुत्र! जो बुद्धिमान् शत्रुओंद्वारा किये गये समस्त पाप-साधनोंको जान सकते हैं, जो विना किसी धातुकी सहायतासे बने शरीर संहारक तीक्ष्ण अस्त्रों और उनके प्रतिकारोंको जान लेनेमें समर्थ हैं, उनका शत्रु-गण कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते। तृण-काष्ठ विनाशक, शीत आदि समस्त वस्तुएं महावनके विविर-निवासी जीवोंका नाश करनेमें समर्थ नहीं होतीं। जो व्यक्ति इन सब बातोंका ज्ञान रखते तथा उस ज्ञानके अनुसार सदैव आपत्तियोंसे अपनेको बचाते रहते हैं, वे निर्विघ्नतासे अपना जीवन-निर्वाह करते हैं। उन्हें किसी समय भी मृत्युका भय नहीं होता। जो लोग अपनी नेत्र-दृष्टिसे काम नहीं लेते, वे रास्तेका पता लगाने और दिशाका निरूपण करनेमें समर्थ नहीं होते। जिन व्यक्तियोंमें धैर्य्यका निवास नहीं है, वे अपने जीवनमें कभी ऐश्वर्य्यशाली नहीं हो सकते। तुम मेरे इन उपदेशोंके प्रत्येक वाक्यको स्मरण रखना और किसी समय भी न भुलाना। जो व्यक्ति शत्रु द्वारा बनाये गये धातुहीन शस्त्रोंके भुलावेमें आ जाते हैं, वे काँटोंके बने घरकी भाँति दोनों ओरके निकलनेके मार्गवाले विविर द्वारा अग्निसे रक्षा पा सकते हैं।

नक्षत्रों द्वारा बुद्धिमान् व्यक्ति अनायास दिशाका निरूपण कर ले सकते हैं। जो व्यक्ति अपनी पाँचों इन्द्रियोंको बुद्धि द्वारा संयत या साधे रह सकता हैं, वह कभी शत्रुओं द्वारा नहीं सताया जा सकता।"

विदुरकी इस उपदेशवाणीको सुनकर युधिष्ठिरने उत्तर दिया—"पितृव्य! मैं आपके अभिप्रायको भली भाँति समझ गया हूं।"

यथा समय पाण्डव लोग वारणावतमें जाकर उपस्थित हो गये। पुरोचनने पहलेसे ही आकर सबकी बड़े आदरके साथ अगवानी की। कुशल-प्रश्नके बाद वे सब पुरोचनकी बनवायी चतुःशालामें जा ठहरे। सबको यथाविधि ठहराकर पुरोचन किसी आवश्यक कामसे दूसरे स्थानको चला गया। आज वह अत्यन्त व्यस्तसा मालूम होता था। पाण्डवोंकी परिचर्य्याके लिये पुरोचन इतना व्याकुल क्यों था, यह पाण्डवोंसे छिपा नहीं था। पाण्डव श्रेष्ठ युधिष्ठिर उस गृहका निरीक्षण करके भीमसेनसे बोले—"भाई! यह घर आग्नेय द्रव्योंसे बना मालूम होता है। महाप्राज्ञ विदुरने इसका सन्धान लगाकर ही हमें पहलेसे सावधान कर दिया है। तुम अधीर न होना। हम यहाँ सावधान भावसे निवास करेंगे। मृगयाशील बनकर समस्त स्थानोंमें परिभ्रमण करेंगे, इसलिये यथा समय भागनेका पथ हमसे छिपा न रहेगा। आज ही चुप चाप जमीनमें एक गढ़ा बनायेंगे। उसमें रहनेके कारण अग्नि भी हमारा कुछ न बिगाड़ सकेगी।"

इसी समय एक कार्य्य-दक्ष जमीन खोदनेवाला पाण्डवोंके पास आया और चुपचाप युधिष्ठिरसे कहने लगा—"मैं ज़मीन खोदनेवाला हूं। सुरंग बनानेका काम मुझे बहुत अच्छे ढंगसे आता है। आपके पास मैं महात्मा विदुरकी आज्ञासे आया हूँ।"

युधिष्ठिरने कहा—"तुम हमारे पितृव्य महात्मा विदुरके भेजे आदमी हो, इसलिये हमारे भी सुहृद् और विश्वस्त हो। तुम जैसे विदुरके प्रियतम हो, वैसे ही हमारे भी प्रियतम और विशेष बन्धु हो। अच्छा तो तुम अब शीघ्र ही हमारे आगसे बचनेका उपाय कर दो।"

पाडण्व लोग पुरोचनको धोखा देनेके लिये विश्वास-शून्य हो कर भी विश्वस्तकी भाँति, असन्तुष्ट हो कर भी सन्तुष्टोंकी भाँति उस घरमें निवास करने लगे। बसन्तोत्सवके आमोदमें उन्हें दीन दुनियाँकी कुछ भी खबर नहीं है—ऐसा दिखाने लगे। कुन्ती देवीने एक दिन रातको ब्राह्मण भोजन कराया। ब्राह्मण लोग यथासाध्य भोजन, पानकर अपने अपने घर चले गये, किन्तु एक निषादी अपने पाँच पुत्रोंके साथ मदिरा पानकर नशेमें खूब ग़र्क हो, घर न जा सकी और उसी घरमें सो गयीं।

रातके समय, जब प्रबल वेगसे वायु बह रहा था—जब नगरके सारे लोग घोर निद्रामें सो रहे थे, ठीक उसी समय पुरोचन जिस स्थानपर सो रहा था, वहाँपर भीमसेनने आग लगा दी। क्षण-भर बादही उस घरके चारों ओर अग्नि प्रज्वलित हो उठी। जमीन खोदनेवालेने पहले ही एक सुरंग बना रक्खी थी। पाण्डव



लोग माता कुन्तीके साथ उसी रास्तेसे भाग गये। नगरनिवासी पाण्डवोंके घरको जलता हुआ देख, धृतराष्ट्र और दुर्य्योधनको बेतरह गालियाँ देने लगे। एवं सबको इस कामके लिये म्लेच्छाधम पुरोचनपर ही सन्देह हुआ।

उधर पाण्डव लोग सुरंगके रास्तेसे एकदम गङ्गा किनारे जा पहुंचे। वहाँ पहुंचकर वे गंगा पार होनेके लिये जलकी गहराईका पता लगा रहे थे, कि इसी समय महात्मा विदुरका भेजा हुआ एक व्यक्ति आया और हाथ जोड़ कर युधिष्ठरसे कहने लगा—"महाराज! आपके लिये वायुके समान शीघ्र गामिनी एक नौका और कुछ विश्वस्त नाविक गंगा पार करानेके लिये प्रस्तुत हैं, आप सब लोग शीघ्र जाकर उसपर सवार होइये। महात्मा विदुरने आपसे जो कुछ सकेतमात्र कहा था, वही हमसे कहकर यहां भेजा है। आप इस नौका द्वारा ही आपत्ति-मुक्त हो सकेंगे।"

पाण्डव लोग उस व्यक्तिकी बात सुनकर तत्काल नौकाके पास गये और सब उसपर चढ़ गये। नौका तीरवेगसे आरोहियोंको किनारेकी ओर ले चली।

इस प्रकार बहुदर्शी और महाज्ञानी महात्मा विदुरके बुद्धि-कौशलसे धर्मात्मा पाण्डवोंने अपनी प्राण रक्षा की। दुर्य्योधनके समस्त षड्यंत्रोंका भण्डाफोड़ हो गया। एक भी कारगर न हो सका।

लाक्षागृह-दाहका सम्बाद सुनकर दुर्य्योधन अपने परम मित्र, कर्ण और शकुनीको लेकर वहाँ देखनेके लिये आया। एवं इस बातका

अनुमानकर बड़ा प्रसन्न हुआ, कि कुन्तीके साथ पाँचों पाण्डव स्वर्ग सिधार गये। किन्तु यह सुनकर, कि प्रिय मित्र पुरोचन भी अपने प्राण बचानेमें असमर्थ हो जलकर भस्म हो गया, उसे बड़ा दुःख हुआ। विदुरकी बुद्धि और कौशलसे एवं पाण्डवोंकी कार्य्यतत्परतासे असली घटनाका तो उसे कुछ भी पता न लगा। अतएव विदुरकी बुद्धिमानी इस क्षेत्रमें विशेष प्रशंसनीय है।

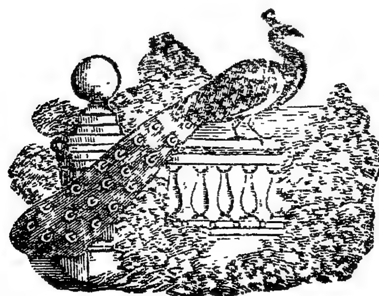
अब दुर्योधनने एक शीघ्रगामी दूतको पिता श्रीमान् धृतराष्ट्र-के पास भेजा। दूतने धृतराष्ट्रको सम्वाद दिया, कि बसन्तोत्सवके उपलक्ष्यमें गये हुए माता समेत पाण्डव जिस घरमें ठहरे थे, उसमें रातके समय किसीने आग लगा दी, इसलिये वे सब जलकर भस्म हो गये, और सेवकोंके साथ पुरोचन भी भस्म हो गया।

इस सम्वादको सुनकर धृतराष्ट्रको मानो बड़ा दुःख हुआ। बेचारे मारे शोकके थोड़ी देरके लिये मूर्च्छितसे भी हो गये। उपस्थित व्यक्तियोंने भी पाण्डवोंकी इस असामयिक मृत्युपर शोक प्रकाशित किया।

अनन्तर कुरुराजने पाण्डवों और कुन्ती देवीका श्राद्धादि कर्म क्षत्रिय-आचारके अनुसार यथारीतिसे सम्पन्न किया। उसमें किसी प्रकारकी भी त्रुटि या कमी नहीं की गयी। किन्तु महात्मा विदुर उस कर्म्ममें सम्मिलित नहीं हुए एवं न उन्होंने किसी प्रकारका शोक ही प्रकाशित किया।

जिस युगमें लाक्षागृह दाह हुआ था, उस युगमें समस्त देशों-की प्रजा अपने अपने राजाओंको भगवान्का विशेष प्रतिनिधि या

देवांश संभूत समझती थी और उसका यह विश्वास अखण्डनीय और बहुत अंशोंमें अभ्रान्त भी था। मंत्री उन लोगोंके प्रधान सहायक होते थे। किन्तु वे कभी साधारण प्रजामेंसे चुने हुए होनेके कारण जनताकी उतनी श्रद्धा या भक्ति नहीं प्राप्तकर सकते थे, कि जितनी राजा लोग। इसका कारण यह था, कि उस समय राजा लोग न्याय दण्ड धारण करके ही विचार और शासन किया करते थे। अविचार और अत्याचार किसे कहते हैं, यह उन्हें कभी स्वप्नमें भी न मालूम होने पाता था। किन्तु अन्धराज धृतराष्ट्र द्वारा पहले पहल विचार-विभ्राट् और न्यायकी सीमाका उल्लंघन होते देख, धर्मात्मा विदुर उसका प्रतिविधान करनेके लिये कटिबद्ध हुए, पर संकल्प पूरा न हुआ। अन्तमें मर्माहत हो वे शुभ दिनकी प्रतीक्षा करने लगे। कभी धैर्यच्युत या व्याकुल नहीं हुए। क्योंकि महात्मा विदुरको इस बातका ज्ञान था, कि धैर्य्य ही शान्ति-लाभका प्रथम सोपान है।



तृतीय परिच्छेद।

पाण्डवगण लाक्षागृहमें जलकर भस्म हो गये। कौरवोंने अपनी ज्ञातिके अनुसार उनके प्रति जैसा कुछ कर्त्तव्य था, उसे उचित रूप और यथारीति निबाह दिया! वे रीतिमत रोये, घरमें स्यापा कराया और अशौच भी मनाया। राज्य निरापद तथा निष्कण्टक हो गया; इस लिये मन ही मन अत्यन्त प्रसन्न हुए। दुर्य्योधन आजकल चक्रवर्ती सम्राट् है। मंत्रीगण सैनिकगण और प्रजागण प्रायः सभी उनके अधीन हैं। भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य आदि महारथीगण उसके सहायक, सूर्य्य-तनय कर्ण परम मित्र, सुवलपुत्र मामा शकुनी प्रधान मंत्री है, इसलिये उसके आनन्दकी कुछ सीमा नहीं।

उधर पाण्डव लोग विपत्तिसे छुटकारा पाकर ब्राह्मणका वेश-धारणकर पाञ्चालाधिपति राजा यज्ञसेनके राज्यमें माता समेत निवास करते थे। कितने एक दिन वाद पाञ्चालेश्वर राजा यज्ञ-सेनकी कन्या द्रौपदीके स्वयम्वरकी वात सर्वत्र प्रचारित हुई। प्रण था, कि जो महाभाग लक्ष्यभेद कर सकेंगे, उन्हें ही द्रौपदी अपना पति वनायेगी। इस प्रण या घोषणाकी वात सुनकर देश देशके राजा लोग पाञ्चाल नगरीमें आकर उपस्थित हुए। महाराजा दुर्य्योधन भी अपने सैन्य और सामन्तों सहित वहां आये थे, आगत लोगोंमें एक दल ब्राह्मणोंका था, उनमें ब्राह्मण वेशधारी पांचों

पाण्डव भी सम्मिलित थे। क्षत्रिय राजाओंमेंसे प्रत्येकने लक्ष्यभेद करनेकी चेष्टा की; परन्तु प्रायः सभी विफल-मनोरथ हुए। कोई भी लक्ष्यका भेदन करनेमें समर्थ न हुआ। वीरत्वका ऐसा अपमान होता देखकर ब्राह्मण वेशी अर्ज्जुनसे न रहा गया और वे बड़े भ्राताओंकी आज्ञा पाकर लक्ष्य-भेद करनेके लिये चले। एक ब्राह्मणकी इस असाध्य-साधन-चेष्टाको देखकर वहाँके बहुतसे व्यक्ति उनकी हँसी उड़ाने लगे एवं किसी किसीने धनंजयको वीर-पुरुष समझ, उनका उत्साह बढ़ाना शुरू किया।

अमर कवि काशीराम उस समयके दृश्यका उल्लेख करते हुए कहते हैं—

"जिस समय महाभाग अर्ज्जुनने लक्ष्यभेद करनेका उद्योग किया, उस समय समस्त ब्राह्मण-मण्डली आश्चर्य्यसे उनकी ओर देखने लगी। ब्राह्मणोंमेंसे कोई कोई कहने लगा, कि यह वीर तो कोई असाधारण पुरुषसा ज्ञात होता है। देखो न, इसका शरीर खिले कमलकी भाँति कैसा शोभायमान हो रहा है। इसके कमलपत्र जैसे नेत्र कानोंतक विस्तीर्ण हैं। इसके शरीरका वर्ण आकाशके वर्णको पराजित कर रहा है। मुखाकृति कितनी निर्दोष और सुन्दर है। सिंहके समान ग्रीवा, सिन्दूरी और पतले ओठ, गरुड़के जैसी उन्नत नासिका, धनुषाकार भौंहें, चौड़ा मस्तक, हाथीके समान कन्धे, गति मदमत्त मातङ्गकी भाति, दोनों भुजायें नागके समान दीर्घ और आजानु लम्बित हैं। जंघाओंका गठन सबसे अधिक आश्चर्य्यप्रद है। यह तो मेघोंमें छिपे सूर्य्यके

समान कोई छद्मवेशी वीर पुरुष है और किसी आपत्ति विशेषसे ही इसने अपनेको छिपा रक्खा है।"

ये सब लोग ऐसी ऐसी बातें कर ही रहे थे, कि अर्जुनने धर्मराजके चरणोंमें प्रणाम किया। युधिष्ठिर ब्राह्मणोंकी ओर देखते हुए बोले,—"हे भूदेवताओं! आपका यह परम अनुरक्तभक्त असाध्य-साधन करने जा रहा है, आप इसे आशीर्वाद दीजिये।" इतना सुनते ही समस्त ब्राह्मणोंने अर्जुनको भूरि-भूरि आशीर्वाद दिये और कहा,—"परमात्माकी कृपासे और हमारे आशीर्वादके प्रतापसे तुम अवश्यमेव द्रुपदनन्दिनीको प्राप्त करोगे।"

भाईकी आज्ञा और ब्राह्मणोंका अमूल्य आशीर्वाद ग्रहणकर अर्जुन धनुष वाण ले रंगशालाके मध्य भागमें जा खड़े हुए। उन्होंने यज्ञसेनराजाको पुकारकर पूछा,—"आपका निर्दिष्ट लक्ष्य कहाँ है?" यह सुन उन्हें धृष्टद्युम्नने पासके एक कुण्डके पास ले जाकर खड़ा कर दिया और कहा इसके जलमें जो चक्र घूम रहा है, उसके बीचके छिद्रमें आप एक सुवर्णकी मछलीका प्रतिविम्ब देखेंगे, बस इसी प्रतिविम्बको देखकर ऊपर लटकी सुवर्ण-मछलीके हीरेके नेत्रमें यदि आप वाण मार सकेंगे, तो मेरी भगिनी आप हीके गलेमें वरमाला पहनायगी।"

इतना सुनते ही महावीर अर्ज्जुनने लक्ष्यस्थानपर खड़े होकर बाणको धनुषपर चढ़ाया और उसे कान पर्य्यन्त खींचकर जलमें मछलीकी परछाईं देख, महाशब्दके साथ लक्ष्यभेद कर दिया।

लक्ष्यभेद होते ही चारों ओरसे आनन्द कोलाहल होने लगा।

नक्कारो और धौंसोंके शब्दसे सभामण्डप कम्पायमान हो उठा। देवगण आकाशसे पुष्प-वृष्टि करने लगे। ब्राह्मणोंने जय-जयके शब्दसे सभा-भवनको गुञ्जरित कर दिया।

अर्ज्जुनके इस असम साहसपर उपस्थित समस्त राजन्य-मण्डलीको बड़ा आश्चर्य्य हुआ। दुर्य्योधनने एक ब्राह्मणदूत भेज कर अर्ज्जुनसे कहलाया, कि—"हे ब्राह्मणवीर! तुम ब्राह्मण हो, ब्राह्मणके लिये क्षत्रियकन्या योग्य नहीं; तुम्हें मैं अपना प्रधान सभासद् बना लूंगा, कितने ही देशोंका राज्य और अनन्तरत्न-भाण्डार अर्पित करूँगा। सौ द्विज कन्याओंके साथ तुम्हारा विवाह करा दिया जायेगा। तुम द्रौपदीको मुझे समर्पित कर दो। और भी जो कुछ माँगोगे, मैं उसे प्रसन्न मनसे दूँगा और कभी आनाकानी न करूँगा।"

इतना सुनते ही अर्ज्जुन अग्निकी भाँति क्रोधसे प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने दुर्य्योधनके ब्राह्मण दूतसे कहा—"हे द्विजोत्तम! तुमने अबतक जो कुछ कहा सो कहा, आगे ऐसी अनुचित बात मुँहसे न निकालना! तुम ब्राह्मण हो, अतएव अवध्य हो। अन्यथा ऐसे अपवचन कहने वाला मेरे सामने जीवित अवस्थामें नहीं खड़ा रह सकता। फिर भी तुम निर्दोष हो; क्योंकि तुम दूत हो। अच्छा, इस बार तुम मेरा दौत्य स्वीकार करो और दुर्य्योधनादि जितने राजा हैं, उनके पास जाकर कहो, कि यदि आप लोग धन और रत्नभाण्डार चाहते हैं, तो मैं अपने पराक्रम द्वारा सागर सहित सारी पृथ्वी जीतकर कुवेरका समस्त रत्न-

भाण्डार प्राप्त करके आप लोगोंको दे सकता हूं। आप सब लोग अपनी अपनी स्त्रियोंको मुझे समर्पण कर दें।"

दूतने दुर्य्योधनादि समस्त राजाओंके पास जाकर अर्ज्जुनका प्रत्युत्तर सुना दिया। वे एक घमण्डी ब्राह्मण—कुमारका ऐसा असम साहस देखकर क्रोधान्ध हो गये और जिस प्रकार प्रलयकारके मेघ सृष्टिका संहार करनेके लिये प्रबल वृष्टि करते हैं, उसी प्रकार अस्त्र और शस्त्रोंकी बौछार करने लगे।

इस अकाण्ड काण्डको देख, देवी द्रौपदी बेहद डर गयीं और अर्जुनकी ओर देखती हुई बोली,—"हे द्विजकुमार! ये राजेगण तो आपके ऊपर समुद्रकी भाँति उमड़े आते हैं। इनका प्रतिरोध करना तो संभवतः मेरे पिताकी शक्तिके भी बाहरका काम है। अतः आज हमलोगोंकी रक्षा नहीं दीखती। आप यहाँसे भाग चलिये।"

अर्जुनने कहा—"देवि, डरो मत। और खड़ी खड़ी तमाशा देखती रहो।"

ऊपर आकाशमें बैठे देवराज इन्द्र भी राजाओंके इस उपद्रव-को देख रहे थे। उन्होंने तत्काल अपनी सर्व कल्याणकारिणी वैजयन्तीमाला और अक्षय्य तरकसको अर्जुनके पास भेज दिया।

इस सामग्रीको पाकर अर्जुनका साहस शतगुण हो गया। उन्होंने सिंहनाद-पूर्वक तत्काल धनुषको इस तरह टंकारा, जिसके घोर शब्दको सुनकर शत्रु-पक्षके राजाओंका हृदय काँप उठा। अब अर्जुनने अपनी वाण-वर्षा आरम्भ की। उस वर्षासे

सारे राजा घबरा गये और अपने अपने अस्त्र शस्त्र छोड़ सभा-मण्डपसे भाग गये।

द्रौपदीने अर्जुनके इस अपूर्व वीरत्वको देख, अपनेको परम सौभाग्यशालिनी और कृतार्थ समझा। इस घटनासे सारे राजा जान गये, कि पाण्डव लाक्षागृह दाहमें नहीं मरे। वे अभीतक जीवित हैं। अब दुर्य्योधनकी दुर्दशाकी सीमा नहीं रही। वह युद्धमें हार और साध्वी तकको गँवाकर दीन-वेशमें हस्तिनापुर पहुंचा एवं वहाँ जाकर पाण्डवोंके जीवित रहनेका सबको सम्बाद दिया। अन्तमें उसने सलाह की, कि पाण्डव लोग एक तो वैसे ही सहायहीन और बलहीन होनेके कारण हस्तिनापुरमें न आवेंगे; तिसपर भी यदि ऐसा साहस करें, तो मैं उन्हें कदापि इस राज्यमें न घुसने दूंगा।

यह जानकर भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य्य आदिने धृतराष्ट्र और दुर्य्योधनको अनेक उपदेश दिये। अनेक प्रकारसे समझाया और बुझाया; किन्तु उन्होंने गुरुजन और हितैषी बन्धुओंके एक वाक्यपर भी कर्णपात न किया। उनकी यह उपेक्षा महात्मा विदुरको सह्य न हुई। विदुरजीने एक दिन अन्धराजके पास महलोंमें जाकर कहा—"महाराज! कल आपके हितैषी और बन्धुओंने कितनेही हितकर उपदेश दिये, किन्तु आपने स्वार्थान्ध और प्रलुब्ध होकर उनमेंसे एकपर भी कर्णपात न किया। महा-मति भीष्मदेव आपके ज्येष्ठ तात हैं, महारथी द्रोण परम पण्डित हैं, तत्वज्ञ कृपाचार्य्य महाज्ञानी हैं। आप उन सबके वाक्योंको भी

उल्लङ्घन करनेमें संकुचित नहीं हुए। यह साधारण ना-समझीका काम नहीं है—इससे बड़ी भारी अविवेचना प्रकट होती है। राधापुत्र कर्णने भी उन्हीं महापुरुषोंके वाक्योंका समर्थन किया था। उसके जैसा आपका हितैषी और बन्धु तो इस संसारमें दूसरा कोई भी नहीं है। उसने कभी आपका अनिष्ट-चिन्तन नहीं किया। किन्तु आपकी चित्तवृत्तिने, अपनी अविवेकताके आगे एक भी बातकी सत्यताको उपलब्ध नहीं होने दिया, किन्तु सब यही चाहते हैं, कि पाण्डवोंसे आपका कल्याण ही हो, अनिष्ट स्वप्नमें भी न हो। वे लोग महावीर और अजेय हैं। तिसपर अर्जुनको तो संग्राममें पराजित करना स्वयं देवराजकी सामर्थ्यसे भी बाहरका काम है। महाबाहु भीमसेनका बल अपरिमित है। कोई भी विजयकी इच्छा रखनेवाला व्यक्ति नकुल और सहदेवकी तलवारोंका सामना नहीं कर सकता। विशेषकर महाराज यज्ञसेन उन लोगोंके श्वसुर हैं, जिनके प्रबल पराक्रमकी बराबरी संसारके बहुत ही कम राजा कर सकते हैं। धृष्टद्युम्न, पाण्डवोंके साले, बलराम सहायक और भगवान् श्रीकृष्ण उनके प्रधान मन्त्री हैं। यदि समर होगा, तो निश्चय ही उन लोगोंकी विजय होगी। उनसे प्रतिद्वन्दिता कर कोई भी व्यक्ति जय-लाभ नहीं कर सकता। अतः उनकी अजेयता और राज्याधिकारकी बात सोचकर आप पहलेसे ही उनसे प्रेम-भाव स्थापित कर लें। नहीं तो आपका सर्वथा अमङ्गल होगा। मुँहपर वृथा ही कलङ्क-कालिमा लगेगी। आप पाण्डवोंके प्रति उचित व्यवहार कीजिये; आपको पुण्य और

प्रतिष्ठा दोनोंका ही लाभ होगा। पाण्डवोंके प्रति अनुग्रह करनेसे केवल वे ही आपसे सन्तुष्ट होंगे, यह नहीं, वरन् आपके वंशधरों-का भी कल्याण होगा—क्षत्रियकुलका कुशल होगा। हे नरनाथ! आप इस बातका अवश्य निश्चय रखें, कि जिस पक्षमें श्रीकृष्ण रहेंगे, उसमें सदा जयका निवास रहेगा। जो कार्य्य साम द्वारा साध्य है, उसे युद्ध द्वारा सिद्ध करना नितान्त मूर्खता है। नाग-रिक और जनपद समस्त प्रजा पाण्डवोंके जीवित रहनेका संवाद पा, उनका दर्शन करनेके लिये व्याकुल हो रही है। पाण्डवोंके नगरमें प्रवेश करते ही सभी आत्म-विस्मृत हो जायेंगे। दुर्य्योधन, कर्ण और शकुनी ये सब अधार्म्मिक और अबोध बालक हैं, इन लोगोंमें इतनी सामर्थ्य कहाँ, जो उन लोगोंके विरुद्ध खड़े हो सकें। इस-लिये हे राजन्! आप पाण्डवोंके साथ मित्रता स्थापितकर उन्हें आधा राज्य दे दीजिये।"

महात्मा विदुरकी ऐसी उत्साहपूर्ण और ओजस्विनी भाषाको सुनकर सभी विस्मित और चमकित हो उठे। विदुरके भयजनक और तिरस्कारपूर्ण वाक्य सुनकर धृतराष्ट्र भी आनाकानी करने या उनके विरुद्ध कुछ कहने-सुननेका साहस न कर सके। अन्धराजने कहा,—"विदुर! तुम सच-मुच बहुदर्शी और विद्वान् हो। तुम्हारे वाक्य भी हितजनक और मंगलकारक हैं। जिस प्रकार मेरे पुत्र इस राज्यके अधिकारी हैं, उसी प्रकार पाण्डव भी इसके अधिकारी हैं। अब तुम शीघ्रतासे पाञ्चाल नगर जाकर माता समेत पाँचों पाण्डवों तथा देवी स्वरूपिणी द्रौप-

दीको हस्तिनापुर ले आओ। मैं प्रसन्नतासे उन्हें आधा राज्य दे दूंगा।"

अन्धराज धृतराष्ट्रका आदेश पाकर महात्मा विदुर बिना किसी प्रकारका विलम्ब किये शीघ्र ही द्रुपद नगर गये। जाकर देखा, कि वहाँ श्रीकृष्ण और बलराम भी मौजूद हैं। प्यारोंको देख और प्यारोंके आनेका सम्बाद सुन सभी परम प्रसन्न और पुलकित हुए। आनन्द तथा उल्लासमें दिनपर दिन बीतने लगे। महात्मा विदुर द्रुपद राजभवनमें कुछ दिनों रह द्रुपदराज, श्रीकृष्ण और बलरामकी अनुमति ग्रहणकर परम सुखसे कुन्ती, द्रौपदी तथा पाँचों पाण्डवोंके साथ हस्तिनापुरको चल दिये। पाण्डवोंके हस्तिनापुरमें उपस्थित होते ही नगर-निवासी लोग प्रसन्नतासे प्रफुल्लित हो उठे। महा धनुर्द्धर वीरकर्ण, चित्रसेन, द्रोणाचार्य्य और कृपाचार्य्य उनकी अगवानी करने गये थे। पाँडवोंके नगरमें प्रवेश करते ही उनकी चारों ओर इतनी भीड़ हो गयी थी, कि ये लोग उसे हटाकर किसी प्रकार भी उनके पासतक न पहुंच सके, पांडवोंके रथ जब नगरके दरवाजेके सामने आये, तब भीड़की अधिकताके कारण वे रथको और आगे न बढ़ा सके। उस समय कुन्तीदेवी नववधूके साथ पाँडवोंको लेकर रथके बाहर आ खड़ी हुईं। नगर निवासी उन सबको नयनभर देख और श्रद्धा समेत प्रणाम कर दूर हो गये। अब रास्ता साफ़ हुआ और रथने फिर नगरमें प्रवेश किया।

पाण्डव लोग नगर प्रवेश करनेके बाद सबसे पहले ज्येष्ठतात

धृतराष्ट्रके भवनमें गये और प्रणाम तथा दंडवत्‌कर हाथ जोड़े हुए उनके सामने खड़े रहे। धृतराष्ट्रने युधिष्ठिरको सम्बोधन करते हुए कहा,—"हे कौन्तेय! मैंने तुम्हें भविष्यतके झगड़े टण्टेकी आशङ्का और उससे बचनेके लिये आधे साम्राज्य समेत खाण्डवप्रस्थ नगर दिया। तुम अपने परिजनों समेत खाण्डवप्रस्थमें मनोरम पुरीका निर्माणकर निष्कण्टक रूपसे रहो। अबसे तुम्हारे ऊपर कोई भी कभी किसी प्रकारका अत्याचार या अविचार न कर सकेगा।"

युधिष्ठिरने कहा—"तात! आपकी आज्ञा शिरोधार्य्य है। मैं उसका कभी उलङ्घन नहीं करूंगा। पहले भी मैंने आपकी आज्ञाओंका पूर्णतः पालन किया है। हम लोगोंको खाण्डवप्रस्थमें रहनेमें किसी प्रकारकी आपत्ति नहीं है।"

महात्मा विदुरकी आकांक्षा पूर्ण हुई। वे पाण्डवोंको लेकर खाण्डवप्रस्थमें चले गये। इन लोगोंने महर्षि व्यासद्वारा कल्याण कारक शान्तिकर्म कराकर नगर निर्माण किया। यमुनाके किनारे परम मनोहर पाँच पुरी निमित हुई--पाणिप्रस्थ, शोप्रस्थ, विलप्रस्थ भागप्रस्थ और इन्द्रप्रस्थ। उनमें इन्द्रप्रस्थ सर्वश्रेष्ठ और प्रसिद्ध हुआ। आजकल इसका नाम इन्द्रपाट है और देहलीके पास अपनी भग्नावस्थामें अब भी मौजूद है। नगर निर्माण हो जाने और उन सबके बस जानेपर धर्म्मराज युधिष्ठिर रत्नखचित स्वर्ण राजसिंहासनपर बैठकर राज्य-कार्य्योंकी परिचालना करने लगे। धर्मात्मा विदुर उनके प्रधान सहायक थे।

इन्द्रप्रस्थका नाम देशभरमें प्रसिद्ध हो उठा। वह परम उत्कृष्ट सुधाधवलित अट्टालिकाओंकी श्रेणियोंसे देदीप्यमान हो, अमरावतीकी भाँति शोभा विकास करने लगा। उसमें लतागृह, शान्ति गृह, अतिथिगृह और पुण्यानुष्ठानगृह सुन्दर परिपाटीसे बनाये गये थे। सुन्दर बावड़ी और सरोवर कमलों द्वारा अपनी सौन्दर्य्योच्छटा छिटकाते हुए स्थान स्थानपर शोभा पा रहे थे। उनमें राजहंस—सारसादि समस्त जलचर जीव आनन्दसे क्रीड़ा करते और दर्शकोंका मन अपनी ओर आकर्षित करते थे। सुविस्तीर्ण राजमार्ग दिनभर पथिकोंके गमनागमन व्यापारद्वारा मुखरित रहता था। इन्द्रकल्प पञ्च पाण्डव इस नगरको दिन दिन शोभाशाली और समृद्धिशाली बनाते जाते थे। जन कोलाहलसे दिनरात सजीव रहनेके कारण नगरमें एक विचित्र ही दृश्य था। सङ्गीतप्रिय लोगोंकी गानध्वनि, धर्मप्राण लोगोंकी समंत्र वेदध्वनि और कलकण्ठ पक्षियोंकी एक-तान कूजध्वनि देवताओं तकके मन—प्राणोंका हरण करने लगी। देश-देशके अनेक भाषा जानने वाले मनुष्य, सर्ववेद—विद्याविशारद ब्राह्मण, वणिक् और शिल्पी वहाँ आ—आकर निवास करने लगे। उस प्रदेशका खाण्डवप्रस्थ नाम लुप्त हो गया। उज्ज्वल इन्द्रप्रस्थकी कीर्त्ति भुवनविख्यात हो उठी। महात्मा विदुर इस नगरके प्रबन्धकर्त्ता और प्रतिष्ठाता थे। इसीसे आज भी वह उन्नत मस्तकसे अपना अस्तित्व जताता हुआ विदुरकी यश-गाथाका गान कर रहा है।

चतुर्थ परिच्छेद ।

किसीसे विवाद करनेकी इच्छा होनेपर, उसके सूत्र या कारणोंको ढूँढ निकालनेमें कोई कठिनाई नहीं होती। भेड़िया भेड़को खानेकी इच्छा होनेपर एक नहीं कितने ही विद्वेषके कारणोंकी खोज कर लेता है।

युधिष्ठिर राजसूय यज्ञकर ससागरा पृथ्वीके अधीश्वर हो गये। दुर्योधन कितने ही प्रतिकूलाचरण करके भी उनके चक्रवर्ती सम्राट् होनेमें किसी प्रकार विघ्न न कर सका। राजसूय यज्ञमें दुर्योधनने भाण्डारीका कार्य किया एवं भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं यज्ञकर्ता और होता ब्राह्मणोंका पादप्रक्षालन किया था। दुर्योधन सभा-मण्डपकी कारीगरीको न समझ कई बार हास्यास्पद हुआ।

महाकवि काशीराम उसके हास्यास्पद होनेका वृत्तान्त वर्णन करते हुए एक स्थानपर लिखते हैं—

युधिष्ठिरकी यज्ञशालाका प्रत्येक गृह अमित अमूल्य रत्नोंसे खचित था। उसके सामने हस्तिनापुरका वैभव तुच्छातितुच्छसा ज्ञात होता था। उन सबको देखकर राजा दुर्योधनके हृदयमें ईर्षाकी आग जलने लगी।

यज्ञ हो जानेके बाद एक दिन उसने मयदानवकी बनायी हुई उस यज्ञशालाका भले प्रकारसे निरीक्षण करना चाहा। अतएव मामा शकुनीके साथ उसने प्रत्येक गृहको देखना आरम्भ किया।

जब वह खास यज्ञ-मण्डपमें आया, तो यज्ञ-वेदीको सरोवर समझ उसने अपने कपड़े ऊपर उठा लिये। पीछे जब मालूम हुआ; कि वह तो यज्ञवेदी है, तब मनही मन बड़ा लज्जित हुआ। अनन्तर यज्ञवेदीसे थोड़ी ही दूर आगे बढ़नेपर सामने ही एक सुन्दर बावड़ी बनी हुई थी; किन्तु देखनेपर भ्रमसे वह एक चौकोर चबूतरासा मालूम होता था। दुर्य्योधन भी उसपर चबूतरा समझ चढ़ने लगा, कि सहसा धड़ामसे जलमें गिर गया। सारे कपड़े भींज गये। इस काण्डको देख जितने भी सभाके आदमी थे, खिल खिलाकर हँस पड़े। भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवने उस समय उसकी खूब खिल्ली उड़ायी। पर अभिमानी दुर्य्योधन उस समय कुछ भी न बोला और लज्जासे नीचा सर किये भाण्डारमें चला गया। वहाँ उसने दूसरे नये वस्त्र पहने।

वस्त्र बदलकर वह फिर सभामें नहीं गया और लोक-लोचनोंसे बचकर वह वहीं बैठा हुआ मन ही मन अनेक प्रकारके सोच-विचार करने लगा।

महाराज युधिष्ठिरका राजसूय-यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। उन्होंने अनेक मङ्गल पाठोंके बीचमें अवभृथ नामक यज्ञान्त-स्नान किया। समस्त राजाओंने उन्हें अपना सम्राट् समझकर भाँति भांतिकी भेंटें दीं।"

यज्ञ-समारोहके समाप्त होजानेपर दुर्य्योधन हस्तिनापुर लौट गया। क्षोभ और दुःखसे इन दिनों उसकी अवस्था अत्यन्त

शोचनीय हो रही थी। वह अब अपने प्रियमित्र कर्ण और मामा शकुनीके साथ कपटतायुक्त जुआ खेल पाण्डवोंके इस बढ़ते हुए वैभवको खर्व करनेकी सलाहें करने लगा। अब उसने बहुतसी सलाहोंके बाद निश्चित किया, कि पाण्डवोंको समरमें जीतना सहज नहीं अतः जुएमें हराना चाहिये। एक खास ढङ्गके पासे बनवाये। शकुनीने कहा—"प्रिय दुर्य्योधन! मेरे समान जुएका खिलाड़ी संसारभरमें नहीं है। धर्मराज जानते तो जुए-की दुम भी नहीं, पर खेलनेका शौक सबसे बढ़ चढ़कर रखते हैं। इसीलिये जुएमें हमारी जीत होना सुनिश्चित है।"

बाजी बदकर जुआ खेलनेकी व्यवस्था हुई। युधिष्ठिर धर्म-परायण और सत्य-प्रिय हैं, वे एकबार प्रतिज्ञा करके उसे कभी भंग नहीं करते। यदि वे बाजी बदकर जुआ खेलेंगे, तो निश्चय ही हारेंगे। अतएव राज्य-च्युत और बनवासी होंगे। मामाके इस कौशलपूर्ण परामर्शको सुनकर दुर्य्योधन पिताके पास गया और वहीं उन्हें अपने मनका भाव जताया। पिता भी ऐसा ही चाहते थे, अतएव उन्होंने पुत्रको प्रसन्नता पूर्वक अनुमति दे दी। अनुमति पाकर दुर्य्योधन जुआ खेलनेके लिये तयार हो गया।

इस सम्बादको सुनकर महात्मा विदुर बड़े ही शङ्कित हुए और अन्धराज धृतराष्ट्रके पास जाकर बोले "महाराज! अब आप फिर अधर्मको प्रश्रय देना चाहते हैं। जुआ महाकलहका मूल है। उससे आत्म-विरोध और भेद पैदा होता है। जिस प्रकार मत्त साँड़ मदमें भरकर अपने सींगोंको अपने आप ही नष्ट

कर डालता और रक्षाके अस्त्रोंसे शून्य हो बैठता है, उसी प्रकार दुर्य्योधन भी अपने मङ्गल और कल्याणोंका स्वयमेव नाश कर रहा है। जिस प्रकार कोई आदमी एक अबोध बालकसे खेई जानेवाली नावपर चढ़कर समुद्रयात्रा करता और जान बूझकर आपत्तियोंमें फँस जाता है, उसी प्रकार जो आदमी स्वयं वीर और विद्वान् होकर अपनी प्रज्ञाको अवज्ञाकर केवल दूसरोंके कथनानुसार काम करने लगता है, उसकी उक्त समुद्रयात्रीके जैसी ही अवस्था होती हैं। दुर्य्योधन युधिष्ठिरके साथ बाजी बद्कर जुआ खेलना चाहता है। आपने भी प्रसन्न होकर उसे वैसा करनेके लिये अनुमति दे दी है। विश्वास रखिये; कि उससे आपका मङ्गल नहीं होगा। आप अभी भी सम्हल जाइये और दुर्य्योधनकी नचायी कठपुतलीकी तरह अग्निमें प्रवेश न कीजिये। अज्ञातशत्रु युधिष्ठिरको मैं जानता हूं। आपके बुलानेपर अवश्य जुआ खेलने वह आ जावेंगे और जुएमें हारकर जब वे क्रुद्ध हो बैठेंगे, तो भीमसेन और नकुलसहदेवके पराक्रमका सामना करनेवाला आपके यहाँ मुझे एक भी आदमी नहीं दीखता। दुर्य्योधन इस जुएके व्यसनसे मत्त हो अपने हिताहित विषयक समस्त ज्ञानको खो बैठा है। वह पाण्डवोंको अवश्य क्रुद्ध करेगा। ऐसा होनेपर आपसे पाण्डव अपना नाता तोड़कर अलग हो जायेंगे। आपको याद है, जब कंस अधिक अत्याचारी हो गया था, तब उसे यादव और भोज सबने त्याग दिया था और इसीके फलस्वरूप एक दिन श्रीकृष्ण और बलरामने आकर उसका प्राणान्त

कर डाला। अतएव आप सोच-समझसे काम लीजिये और कालस्वरूप अपने दुष्ट पुत्रोंका परित्यागकर पाण्डवरूप मयूरोंको अपने यहाँ पालिये। गीदड़ोंसे पीछा छुड़ाकर सिंहोंसे अपने राज्यकी रक्षा कराइये। अनर्थक जाति वध और वन्धुवध जनित पापमें लिप्त न हूजिये। धर्मका खयाल रख, तदनुकूल आचरण करनेसे आप शोकसे बचेंगे और सुखशान्तिसे जीवन बिता सकेंगे। इस पापी दुर्योधनके फन्देमें न फंसिये। मेरा कहना मानकर पाप-पथसे बचिये।

दुर्य्योधन इन उपदेशोंको न सह सका। वह क्रोधसे उन्मत्त होकर कहने लगा—"विदुर! तुमने सदा हमारी ही निन्दा की हैं।-पाण्डवोंका गुण-गान करनेमें तो तुम सहस्र-जिह्व शेष हो, पर हमारी सच्ची बातोंका अनुमोदन करना तो दूर किनारे, फूटे मुँहसे उन्हें कभी अच्छा भी नहीं कहते। हम तुम्हारी आदतको अच्छी तरहसे जानते हैं। तुम्हारा हृदय घोर हलाहलसे भरा हुआ है। हमारी अवज्ञा करना—हमें मूर्ख और पापी प्रमाणित करना; मानो तुम्हारे जीवनका एक उद्देश्य है। क्योंकि तुम्हारे वाक्योंसे, तुम्हारी बातोंके अक्षर-अक्षरसे, यही भाव प्रतिध्वनित होता है। अफसोस! हम अबतक एक महान् भूलमें पड़े रहे हैं। मानों जान-बूझकर मैंने एक विषधर सर्पका पालन किया है। विदुर! तुम्हारी प्रकृति बिल्लीसे भी गयी बीती है। तुम अपने पालन-कर्त्ताकी ही सदैव अनिष्ट-चिन्तना किया करते हो। तुम विद्वान होनेपर भी कादर; प्रभुनिन्दक, बगुलाभक्त और आश्रित होकर आश्रयदाताका

अमङ्गल चाहनेवाले हो। देखो, अब आगेके लिये सावधान रहो। जीभको वसमें रखो। अन्यथा तुम्हारा मङ्गल न होगा। हम भी जानते हैं, कि जूएका व्यसन अनर्थका मूल है। पर हम उसे आपके कहने-सुननेसे न छोड़ेंगे। हमें आपकी भली सलाहोंकी जरूरत नहीं है और न हम उन्हें आपके मुँहसे सुनना ही चाहते। अपनी बेकारकी बकवाद करके हमे परेशान न करो। जाओ। क्षणभरकी भी देर न कर यहाँसे बाहर निकल जाओ।"

महात्मा विदुरका ऐसा अपमान करनेसे अपने कुल-कलङ्क पुत्रको अन्धमति अन्धराजने भी न रोका, मानो इस कुकर्ममें वे भी सम्मिलित थे।

विदुर महाराज और न बैठे रहे। फौरन उठकर चले गये। दुर्योधनने युधिष्ठिरको, अपनी आज्ञाको पिताकी आज्ञा बताकर एक दूतद्वारा बुला भेजा। उनके आनेपर जुएका खेल आरम्भ हो गया। इस खेलमें युधिष्ठिर हार गये। सारा राज्य और समस्त धन यहांतक की अपनी प्राणप्रतिमा पत्नीको भी दाँवपर रखकर गँवा दिया।

ये सब काण्ड देखकर दुर्योधन मन ही मन बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने धर्मराजसे कहा,—"क्या और कुछ भी शेष है?"

युधिष्ठिर चुप रहे।

दुर्योधनने कहा,—"मालूम होता है, अब पासमें कुछ नहीं रहा है। खैर, अबकी बार एक बाजी और खेलो, आप अपने दाँवपर बारह वर्षका बनवास और एक वर्षका अज्ञातवास रखें

और मैं आपका हारा समस्त राज्य दाँवपर रखता हूं।"

फिर जूएका रुका हुआ स्रोत प्रवाहित हुआ और इस बार युधिष्ठिर उसमें बुरी तरहसे फँसे। दुर्य्योधनका कपटी मामा शकुनी अपनी कपटतासे इस बार भी जीत गया।

अब क्या था? दुर्य्योधनके हाथमें मानो समस्त विश्वका राज्य आ गया। पाण्डव इस समय उसके आगे फकीर हैं। वह अब उनपर मनमाना अत्याचार और पापाचार कर सकता है,—पाण्डव लोग उसकी बातमें चूं भी नहीं कर सकते।

आखिर पापात्माओंके पापी मनमें पाप-वासनाका उदय हो आया। दुर्योधनने अपने भाई दुःशासनको आज्ञा देकर पाण्डव-पत्नि पतिव्रता द्रौपदीको भरी सभामें ले आनेके लिये कहा, मानो अब पाशव-अत्याचारका सूत्रपात हुआ। आज्ञानुसार राजमहिषी अन्तःपुरवासिनी द्रौपदीको केशाकर्षण पूर्वक सभामें लाया गया। द्रौपदी उस समय मासिक-धर्मसे थी। वह परेशान थी, असली घटनाके न मालूम होनेसे हैरान थी। बिना सबब भरी-सभामें इस प्रकारसे लाये जानेसे, उसकी आँखोंसे दर-दर करके आँसुओंकी धारा बह रही थी, किन्तु इस अपमानका कारण अज्ञात था।

इसी समय दुर्य्योधनने कहा,—"कृष्णे! मालूम है, तुम्हारे पति युधिष्ठिरने तुम्हें आज जूएमें हारकर हमें समर्पित कर दिया है। आजसे तुम हमारी रखैली पत्नी हुई। आओ, यहाँ आओ और मेरी इस जाँघपर आसन ग्रहण करो।"

द्रौपदीपर मानो वज्रपात हुआ।

दुर्य्योधनने फिर कड़ककर कहा,—"सुनती हो—मैंने तुम्हें क्या आज्ञा दी है, उसका पालन करो। यदि न मानोगी तो पछताना पड़ेगा।"

द्रौपदीके सिरमें चक्कर आने लगा।

दुर्य्योधन फिर बोला,—"मालूम होता है, तुममें अब भी रानीपनेकी बू भरी है; अच्छा दुःशासन! इस अभिमानिनीका वस्त्र भी छीन लो—एकदम नङ्गी कर दो।"

अब द्रौपदीसे न रहा गया। वह क्रुध सर्पिणीकी भाँति सभाके समस्त उपस्थित सभासदोंको सम्बोधित करती हुई बोली,—"क्या ये दीख पड़नेवाली मानव-मूर्त्तियां जिन्दा हैं? मैं यहाँपर सर्वशास्त्र विशारद, सौ इन्द्रोंसे भी अधिक महाबली पितामहको देख रही हूं, धर्मप्राण द्रोण और बृद्ध वशिष्ठ समज्ञानी कृपको भी देख रही हूं—क्या आज इनका विवेक नष्ट हो गया? यहाँपर मेरे तो सभी बड़े हैं, क्या इनका बड़प्पन कोरा दिखानेके लिये है? मा पृथ्वी! विदीर्ण हो जाओ! आकाश! शतखण्ड होकर गिर पड़ो। क्या ऐसे अधर्मियोंके अत्याचारोंको तुम अपने तले और ऊपर होता सह सकते हो? हे दुष्ट चरित्र कौरवों! मुझे नंगी न करो। शान्त होओ! महात्मा युधिष्ठिर धर्मका खयालकर चुप हुए बैठे हैं। पर याद रखो, उनके अन्यान्य भाई तुम्हें कभी क्षमा न करेंगे। मैं अशौची अतएव अस्पृश्या हूं, मुझे मत छूओ। धिक्कार है! उपस्थित कौरवो! तुम्हें शत बार धिक्कार है। तुम लोगोंको धर्मके ऊपर अत्याचार होता देख शर्म नहीं

आती ! हा, कोई भी मुझ अबलाकी रक्षा करने नहीं आता। क्या महात्मा भीष्म और द्रोण भी सत्यहीन हो गये ?"

इतना कहते कहते द्रोपदी धैर्य्यहीन हो गयी। सारा शरीर काँपने लगा। वह समस्त शरीरको अश्रुजल द्वारा भिगोती हुई बोली—"क्या महात्मा विदुर आज इस सभामें उपस्थित नहीं हैं ? हा, यदि वे यहाँ मौजूद होते तो प्राणान्त होनेपर भी मेरी रक्षा करनेसे न चूकते।"

दुर्य्योधन हँसता हुआ बोला,—"द्रौपदी ! विदुरमें भी इतनी सामर्थ्य नहीं है, जो तुम्हारी रक्षा कर सके। इस लिये अपने बचावकी आशा तो तुम इस समय छोड़ ही दो। क्रोध दूर करो और अपनेको पराधीन जानकर शान्त हो जाओ।"

दुर्य्योधनके दुर्वाक्य सुन किसीने भी उनका प्रतिवाद न किया। फिर प्रतिवाद करना तो एक ओर, किसीने उसके खिलाफ़ ज़बान भी न हिलायी। सभाके छोटे-बड़े सब चुपचाप बैठे रहे।

इसी समय महात्मा विदुर उन्मत्तोंकी नाईं सहसा सभामें आकर खड़े हो गये और मेघ-गम्भीर स्वरसे कहने लगे,—"कौन कहता है, कि द्रौपदी पराधीन है। द्रौपदी अकेले युधिष्ठिरकी पत्नी नहीं हैं। माना, कि युधिष्ठिरने उसे जूएमें हार दिया है। किन्तु अन्य चार भाइयोंका पत्नीत्व उसमें अभी भी बाकी है। युधिष्ठिर अब उसपर कोई अधिकार नहीं रखते, किन्तु भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेवका तो उसपर पूर्ण अधिकार है।

खैर इसे भी मत मानो, किन्तु यह बात तो शास्त्र-सिद्ध है, कि सतीत्व-रक्षामें रमणियाँ पूर्ण स्वाधीन हैं। इस विषयमें परपुरुष तो एक ओर स्वयं स्वामी भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता। अतएव द्रौपदी स्वाधीन और पूर्ण स्वाधीन है। किसीकी भी सामर्थ्य नहीं जो उसपर हाथ डाल सके। यदि संसारमें अब भी किंचित्मात्र पुण्यका अस्तित्व है और सत्यमें कुछ बल है, तो निश्चय ही विपद्-भञ्जन भगवान द्रौपदीकी रक्षा करेंगे। ये दुष्ट कौरव एक अबला स्त्रीपर कितना ही अत्याचार क्यों न करें, किन्तु दीनबन्धु जगदीश द्रौपदीकी लज्जाकी अवश्य अक्षुण्ण रखेंगे। द्रौपदी! तुम किसी प्रकारसे न घबराओ।"

इतना सुनते ही दुर्य्योधनने दुःशासनसे कहा,—"दुःशासन! खड़े खड़े क्या देख रहे हो? क्या इस आडम्बरीकी बातोंमें आ गये? द्रौपदीको नंगा कर दो। हम भी तो देखें विदुरके भगवान् द्रौपदीकी किस प्रकार रक्षा करते हैं?"

दुःशासन द्रौपदीका वस्त्र खींचने लगा। द्रौपदी बिलख-बिलखकर भगवान् श्रीकृष्णकी प्रार्थना करने लगी। भगवान्का आसन डिगा और द्रौपदीकी प्रार्थना पूर्ण हुई। दुःशासन साड़ी खींचता खींचता थक गया, तथापि द्रौपदीको नंगा न कर सका। साड़ी जितनी खींची जाती थी, उतनी ही वह बढ़ती जाती थी। यह देख उपस्थित सभी लोग विस्मित और स्तम्भित हो उठे। उस समय विदुरने कहा—"दुर्य्योधन! तू मन्दमति और मूर्ख है। तूने अपनेको जिस जालमें फँसा लिया है, उसकी जटिलतासे तू

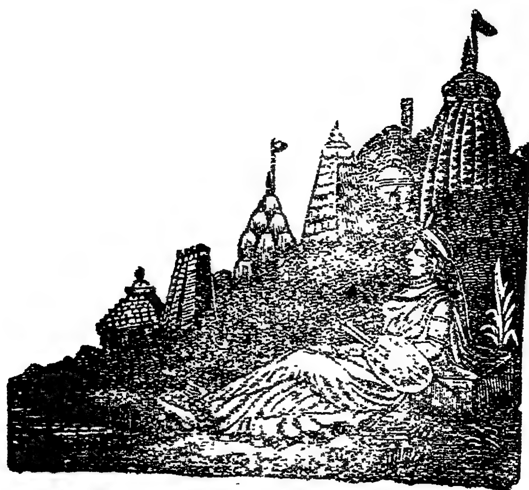
अज्ञात है। तूने मृग होते हुए भी शेरको कुपित किया है। अतः तेरे सिरपर मृत्यु अपने सहचरोंके साथ विकट ताण्डव-नृत्य कर रही है। तेरे और तेरे संरक्षकोंके लिये यमालयका द्वार खुल गया है। तूने आज जैसी नीच चेष्टा और घृणित काम किया है, ऐसा पापीसे पापी आदमी भी नहीं करते। याद रख, कि शठता नरकका द्वार है। अत्याचार उस नरकद्वारपर पहुंचानेवाला मार्ग है। तू अहंकारसे मतवाला हो रहा है। अपनी इस मत्तताका भीषण-फल तुझे एक न एक दिन अवश्य भोगना पड़ेगा। अब भी होशमें आ—अब भी सम्हल जा, तेरा कल्याण होगा। युधिष्ठिर! तुम धार्मिक हो ; धार्म्मिकोंको ऐसे पापीके राज्यमें एक क्षणके लिये भी रहना पाप है। अतएव यहाँसे जल्द चले जाओ। याद रखना, जहाँ धर्म्म है, वहीं जय है। तुम उसी अप्राप्य और दुर्लभजयके अधिकारी होगे। धैर्यका भूलकर भी परित्याग न करना। तुम्हारा कल्याण होगा।"

यह सुनकर युधिष्ठिर भाइयों समेत तत्काल उठ खड़े हुए एवं माता कुन्तीको महात्मा विदुरके हाथ सौंप कर कहने लगे—"पूज्य! हमलोग सस्त्रीक अपने प्रतिज्ञानुसार बनवास और अज्ञातवास करने जाते हैं। आप आशीर्वाद दें, हम सबकी मति निरन्तर धर्ममें ही रहे। कभी एक क्षणके लिये भी हम उस कल्याणकारी सत्य-पथसे भ्रष्ट न हों।"

उस समय क्रोधसे उन्मत्त महाबली भीम गम्भीर स्वरसे बोले—"हे पूज्य! मैं आपके चरणोंको पकड़कर प्रतिज्ञा करता

हूं, कि यदि पृथ्वीपर धर्मका निवास है, तो एक दिन मैं निश्चय ही इस कुलांगार दुर्य्योधनकी उसी जाँघको, जिसे दिखाकर इसने देवी द्रौपदीका अपमान किया है,—तोड़कर इस अत्याचार का बदला लूंगा और इस दुष्ट दुःशासनकी, जिसने धर्माधर्मका खयाल न कर, भरी सभामें सती द्रौपदीको नग्न करनेकी चेष्टा की है, संग्राममें छाती फाड़कर रक्तपान द्वारा अपनी इस धधकती छातीके क्रोधको शान्त करूंगा।"

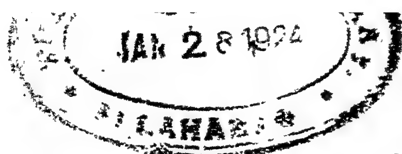
महात्मा विदुर भीमकी इन भीम प्रतिज्ञाओंको सुनकर थर्रा उठे। इन्हें कुरुकुलका अन्त दिखायी देने लगा।



पंचम परिच्छेद।

पाण्डवगण द्रौपदीके साथ बनवासको चले गये। कुन्ती देवी विदुरके आश्रयमें रहने लगीं। भीमसेनकी प्रतिज्ञाओंको निरन्तर स्मरण रखनेसे धृतराष्ट्रकी भय-भावनाओंने विकराल स्वरूप धारण कर लिया। भावनाओंसे नितान्त व्यथित होकर एक दिन धृतराष्ट्रने विदुरको बुलाकर कहा,—"प्यारे भाई! तुम बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् हो। तुम्हें धर्मके समस्त सूक्ष्म तत्वों का ज्ञान है। तुम आत्मीय और पर, समस्त जनोंको एकसी दृष्टिसे देखते हो। अतः इस समय कोई ऐसा उपाय बताओ जिससे कौरवोंका कल्याण हो। मुझे तुम्हारे परामर्शपर यथेष्ठ विश्वास है। तुम जानते हो, कि पाण्डवोंको बनवास देना उचित नहीं हुआ। उससे महान् अनर्थका सूत्रपात हुआ है; किन्तु वह अनर्थ जहाँका तहाँ ही दबकर रह जाये—कोई भयानक स्वरूप धारण न कर सके—ऐसी चेष्टा करनी ही हमारे और तुम्हारे कर्त्तव्यकी पूर्त्ति है। कुछ बता सकते हो, कि पाण्डवोंके बनवासका सम्बाद पाकर प्रजाका हमारे ऊपर कैसा भाव है? तुमपर समस्त लोग श्रद्धा और विश्वास करते हैं। अतः मेरे अनुमानके अनुसार प्रजाके वर्त्तमान भावोंका तुम्हें भले प्रकारसे ज्ञान होगा। इसके सिवा तुम कर्म्माकर्म-निर्धारणमें भी भारी व्युत्पत्ति रखते हो। अतः किसी ऐसे प्रतिविधानको तो सोचो जिससे पाण्डव लोग हमारा क्रुद्ध होकर अनिष्ट न करें।"

विदुरने कहा—"महाराज! धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-ये चार पदार्थ ही मानव-जीवनके प्रधान लक्ष्य हैं। पण्डित लोग राजाको धर्मका अवतार मानते हैं। आप सच्चे धर्मात्मा बनकर पाण्डव और अपने पुत्रोंका पालन करें। आपने जान बूझकर अशान्तिको आश्रय दिया है। आपके पुत्र दुर्य्योधन और पापात्मा शकुनीने जबर्दस्ती पाण्डवोंके बड़े भाई धर्मात्मा युधिष्ठिरको बुलवा कर कपट-पूर्वक जूआ खेल उनका सर्वस्व छीन लिया है। इस पापका प्रायश्चित यही है, कि आप पाण्डवोंको आदर समेत बनसे बुलाकर उनका सारा राज्य उन्हें फिर अर्पित कर दें। तभी अपयश दूर और कुलका कल्याण होगा। धर्म इसी बातकी पुष्टि करता है। पाण्डवोंको सन्तुष्ट रखना ही आपके पुत्रादिके किये दुष्कर्मोंका प्रायश्चित्त है। यदि आप ऐसा न करेंगे, तो निश्चय ही कौरव-कुलका नाश होगा। क्रुद्ध भीमसेन और अर्जुनके हाथसे कोई भी रक्षा न पा सकेगा। युद्धविद्या विशारद अर्जुन दोनों हाथोंसे अस्त्र और शस्त्रोंका प्रयोग करते हैं। बल-शाली भीम त्रिभुवनमें अजेय हैं। महाराज! आपके दुष्ट पुत्रोंने उन्हीं महाबलियोंको क्रुद्ध किया है। मैंने आपसे सैकड़ों बार अनुरोध किया, कि आप ऐसे दुष्ट पुत्रोंका त्याग कर दीजिये, पर आपने एक भी न सुनी और अब पछताते हैं। खैर, अब भी समय है। अभी भी युद्धाग्नि प्रज्वलित होनेमें देर हैं। आप शीघ्रतासे शान्ति जलका सिंचन कीजिये। यदि आप मेरी बात मानकर पाण्डवोंसे मेल कर लेंगे, तो शेष जीवन सुखसे बिता



सकें। आपने अबतक भविष्यके सुखोंके लिये जैसे जैसे दुष्कर्म किये हैं, उनका परिणाम आपको रुलाना है। मैं वारम्बार अनुरोध करता हूं, कि आप राग-द्वेषसे शून्य होकर देश और वंशका कल्याण करें।"

धृतराष्ट्र बोले,—"विदुर! तुम जो कुछ कह रहे हो, वह मुझे न्याय-सङ्गत नहीं मालूम होता। कारण, मैं सदासे इस बातकी परीक्षा करता आया हूँ,—सरासर देखता आया हूं, कि तुम हमारे पक्षके हितचिन्तक नहीं, वरन् पाण्डवोंके शुभचिन्तक हो। अबतक तुमने जितनी भी बातें कहीं, वे सब पाण्डवोंकी तरफ़दारी ही जताती हैं। दुर्य्योधन मेरा आत्मा है, अतएव मेरा देहस्वरूप है। मैं कभी उसका त्याग नहीं कर सकता। तुम्हीं कहो, क्या तुम दूसरोंके लिये अपना प्राण-त्याग कर सकते हो? तुम्हारी उक्त बातोंको सुनकर मुझे ज्ञात होता है, कि तुम्हारा हृदय अत्यन्त कलुषित और पत्थरका है। तुम कपट-वेशी धार्म्मिक हो—बगुला भक्त हो। जो सच्चे धार्म्मिक होते हैं, वे कभी ऐसा कठोर और निष्ठुर परामर्श नहीं देते। विशेषतः तुम पाण्डवोंके जासूस हो। तुम्हारी बातोंपर विश्वास करना, अपनी मूर्खताका परिचय देता है। मैं आज्ञा करता हूं, कि तुम जितनी भी जल्दी हो सके यहाँसे उठ जाओ। भविष्यमें मुझे कभी अपना यह पापी मुँह न दिखाना।"

इतना कहते-कहते अन्धराज धृतराष्ट्र रनिवासमें चले गये। विदुरजीने भी इस पापनगरीमें रहना उचित न जान, धर्मात्मा

पाण्डवोंका सहवास करना ही धर्मसङ्गत समझा, अतएव वे बहुत ही जल्द पाण्डवोंके पास काम्यक बनमें चले गये।

पाण्डवोंने धर्म्मात्मा विदुरको आता देख उठकर सम्मान समेत उनकी अभ्यर्थना की। योग्य आसन दे, उनका पूजा-सत्कार किया। अनन्तर धृतराष्ट्रके साथ विदुरका जो कथोप-कथन हुआ था, उसे सुना कर विदुरने स्नेह समेत कहा—"युधि-ष्ठिर ! मुझे महाराज धृतराष्ट्रने त्याग दिया है। किन्तु इस बात-को सुनकर तुम अपने मनमें दुःखी न होना। मैं तुम्हें यहाँपर क्षुभित करने नहीं आया हूं। कितनी एक कामकी बातें कहने आया हूँ, तुम उन्हें शान्तिचित्त होकर सुनो। देखो, युधिष्ठिर, जो व्यक्ति शत्रुओं द्वारा क्लेश पाकर क्षमावलम्बन और अपने भले दिनोंकी प्रतीक्षा किया करते हैं, वास्तवमें बुद्धिमान् वे ही लोग हैं। उनमेंसे प्रत्येक व्यक्ति अपने समस्त शत्रुओंको जीत और समस्त पृथ्वीका अधिपति बन जा सकता है। सहायता प्राप्त करनी ही राज्य-प्राप्तिका एक मात्र उपाय है। क्योंकि सहा-यता करनेवाले सहकारी दुःखका अंश भी ग्रहण करते हैं। सहकारियोंके मङ्गलमें ही अपना मङ्गल है। सहकारियोंके साथ सद्व्यवहार, सत्यालाप, कपट व्यवहारका परित्याग और एक साथ एकसा भोजन करनेसे सद्भाव स्थापित होता है। उनके सामने घमण्ड करना कभी और समय भी उचित नहीं है।

युधिष्ठिर बोले—"आपने इस समय जो कुछ भी कहा, उसे मैं सदैव पालन करनेकी चेष्टा करूंगा।"

युधिष्ठिर और महात्मा विदुरमें इसी प्रकार वार्तालाप हो रहा था, कि इसी समय सञ्जय आ गये। उन्होंने महात्मा विदुर-से कहा,—"महामते! धृतराष्ट्र आपका परित्यागकर अपने मनमें बड़े ही दुःखी हुए हैं। जिस प्रकार दशानन अपने छोटे भाई विभीषणका परित्यागकर सवंश नष्ट हो गये थे, महाराज धृत-राष्ट्र भी उसी प्रकार अपने भविष्यको देखकर व्याकुल हो उठे हैं। आप विद्वान् हैं, सन्धि और युद्धके परिणामोंको भले प्रकार जानते हैं। महाराज धृतराष्ट्रको पाण्डवोंके बाहुबल और धर्म-बलकी गरिमा भले प्रकारसे ज्ञात है। इनकी आलोचना और विचारकर वे एकदम मूर्छितसे हो गये थे। थोड़ी देर बाद होशमें आकर मुझे बुलाया और कहा—"संजय! विदुर मेरे भाई, मेरे सच्चे मित्र और साक्षात् धर्मावतार हैं, उनके बिना मैं एक दिन भी जीवित नहीं रह सकता। मेरी छाती फटी जाती है, आप जितनी शीघ्रतासे हो सके उन्हें वनसे वापस लौटा लाइये। सो हे धर्मात्मा विदुर, मैं आपके पास आकर प्रार्थना पूर्वक निवेदन करता हूँ, कि आप अति शीघ्र हस्तिनापुर चलिये और अत्यन्त व्याकुल अपने बड़े भाईके अशान्त चित्तको शान्त कीजिये। अन्यथा महाराज धृतराष्ट्रको प्राण-रक्षामें सन्देह है।"

उदारचेता विदुरने स्नेहसे अनुप्राणित हो युधिष्ठिरसे इस विष-यमें कर्त्तव्याकर्त्तव्यकी सम्मत ली। युधिष्ठिरने भी विदुरके धर्म-भाव और समदर्शिताकी प्रशंसा करते हुए हस्तिनापुर जानेकी अनुमति देदी। महात्मा विदुर अति शीघ्र संजयके साथ हस्तिना-

पुर चले गये। जब धृतराष्ट्रके समीप पहुंचे और संजयने यह कहा; कि उदार विदुर आपके दुर्व्यवहारकी बात भूलकर आज्ञा पाते ही काम्यक वनसे लौट आये हैं, तब धृतराष्ट्र बड़े प्रसन्न हुए। उन्हें छातीसे लगाकर सप्रेम बोले—"विदुर! मैंने तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय किया है। अनेक कटुवाक्योंका प्रयोग किया है अब तुम उन सबको भूल जाओ और मुझे अपने उदार हृदयसे क्षमा करो।"

विदुर बोले—"राजन्! आप मेरे बड़े भाई हैं। मैं जब आपके पास लौटनेके लिये तयार हुआ, तभी मैंने आपके व्यवहार की बातोंको भुला और हृदयसे क्षमा कर दिया था।"

यह सुन अन्धराजने विदुरको गलेसे चिपटाया और उनका माथा सूँघा। अर्थात् भाई-भाईमें पुनर्मिलन हो गया। धृत-राष्ट्र राजाधिराज महाराज चक्रवर्ती हैं, विदुर फूंसकी झोपड़ीमें रहनेवाले, सामान्य गृहस्थ और भगवद्भक्त हैं। धृतराष्ट्र प्रभु और विदुर उनके भृत्य हैं। किन्तु धृतराष्ट्रमें इन्द्रिय-परायणता शत्रुभय, स्वार्थ और पर-स्त्री-कातरता हैं विदुर जितेन्द्रिय, स्वाधीन परोपकारी और मुक्त पुरुष है। यही कारण है, जो पार्थिव शक्ति सम्पन्न होते हुए भी असहाय धृतराष्ट्र आध्यात्मसहाय, धर्मवीर विदुरके चले जानेपर चारों दिशाओंमें अन्धकार ही अन्धकार देखने लगे थे। एवं फिर ससम्मान, आत्मापराध-क्षमा याचन पूर्वक उन्हें लौटानेके लिये बाध्य हुए। विदुरके आनेसे ही धृतराष्ट्रकी प्राण-रक्षा हुई। यहांपर महत्व विदुर ही का है।

ऐसा महापुरुष-उदार चेता और सहृदय व्यक्ति किसी समय भी अपने शत्रुओंसे प्रतिशोध या बदला नहीं ले सकता। महात्मा विदुरका हृदय विश्वभरके प्राणियोंके प्रेमसे प्रपूर्ण था। कौरवोंके कुशलकी कामना सर्वदा उनके चित्तको व्यथित और व्याकुल रखती थी। वे कौरवोंके सच्चे हितचिन्तक थे। इसीसे घोर अपमानसे अपमानित होकर भी, धृतराष्ट्र द्वारा निकाले जानेपर भी वे अन्धराजके अनुतप्त होनेका सम्बाद पा तुरत चले आये और अपने मुँहसे एक बार भी धृतराष्ट्रको बुरा नहीं कहा। सच-मुच नैतिक जीवनमें विदुर संसारमें सर्वोच्च हैं। उनकी समता करनेवाला व्यक्ति द्वापर युगमें अलभ्य था। अस्तु।

विदुरके दोबारा आनेकी ख़बर सुनकर पापी दुःशासन और दुर्य्योधनका हृदय जल उठा। उन्होंने तत्काल अपनी चाण्डाल चौकड़ीका अधिवेशन किया। कर्ण, शकुनी आदि सभी सभासद् उपस्थित थे। दुर्य्योधनने सभापतिका आसन ग्रहण किया। प्रस्ताव उठा, कि विदुर निकाल दिये जानेपर भी धृतराष्ट्रके बुलानेसे फिर आ गये हैं। वे हमलोगोंको त्यागने और पाण्डवोंको बुलाकर राज दिलानेके लिये सदैव सीधे राजाके कान भरा करते हैं। अन्धराज धृतराष्ट्र सीधे हैं, उनके हृदयपर विदुरके फुसलावोंका अत्यन्त प्रभाव पड़ता है। आश्चर्य नहीं, कि पाण्डव लोग शीघ्र ही हस्तिनापुर बुला लिये जायं और सारा राज्य उन्हींको दे दिया जाये। हायरे! तब तो हमलोगोंकी न मालूम क्या दशा होगी? अतः महाराज दुर्य्योधनका कथन है, कि—

शकुनी धृतराष्ट्रके पास जायें और कहें, कि यदि आप कुलद्रोही विदुरके कहनेसे पाण्डवोंको फिर बुलाकर राज्य देंगे अथवा अन्य किसी प्रकारकी सहायता पहुँचायेंगे, तो दुर्य्योधन जहर खाकर या गङ्गामें डूबकर आत्महत्या कर लेंगे।"

इस प्रस्तावको सुनकर महाराज कर्ण कहने लगे—मेरी समझमें मित्र दुर्य्योधनकी यह आशङ्का निर्मूल है। पाण्डव लोग धर्म्मप्राण हैं, वे एकबार जो प्रतिज्ञा कर लेते या किसी वचनमें बंध जाते हैं, उसे वे प्राणतः पालन करते हैं। सत्यवादी युधिष्ठिरने जब यह प्रतिज्ञा कर ली है, कि मैं भाइयों समेत तेरह वर्ष तक बनवास करूंगा, तब वे बीचमें—अवधि पूर्ण होनेसे पहले ही कभी नहीं आयेंगे। आपलोग इससे निश्चिन्त रहें।"



षष्ठ परिच्छेद ।

——)*(——

अन्धराज धृतराष्ट्र ने महात्मा विदुरको हस्तिनापुरमें बुलाकर मौखिक शिष्टचार दिखानेमें किसी प्रकारकी भी त्रुटि नहीं की, किन्तु पहले जैसा आत्मीयभाव उनमें फिर न देखा गया। विदुरजी इस बातको भलीभाँति समझ गये कि—धृतराष्ट्र का यह सौजन्य केवल मुख मात्रका ही है, हृदयमें मेरी ओरसे बिलक्षण विद्वेष भरा हुआ है।

विदुर संसारी होनेपर भी अनासक्त पुरुष थे, संसारके मानापमानकी उनकी दृष्टिमें तनिक भी इज्जत नहीं थी। इसलिये धृतराष्ट्रके इस बनावटी व्यवहारको देख उन्हें तनिक भी दुःख या क्षोभ न हुआ। वे महारानी कुन्तिकी सेवा, धर्म्म-ग्रन्थोंका अध्ययन और भगवद्-भजन द्वारा दिन व्यतीत करते थे। हरिनाम-श्रवण, प्रभु-पूजा और विभु-बन्दना उनके जीवनका एकमात्र व्रत था। धीरे धीरे पाण्डवोंकी वनवासकी अवधि पूर्ण हो गयी। महत्मा विदुर धर्मात्मा पाण्डवोंकी बीच बीचमें खबर लेते रहे थे।

तेरहवें वर्षके अन्तमें दुष्ट बुद्धि दुर्य्योधनने महाराजा विराट्की असंख्य दूधारू गौओंको हथियानेके लिये विराट् नगरपर ससैन्य चढ़ाईकर दी। उस समय पाण्डवलोग अपने अज्ञातवासका तेरहवाँ वर्ष वहीं व्यतीत कर रहे थे। अतएव जब उन्होंने दुर्य्योधनकी इस दुराकांक्षाका संवाद पाया, तो उसके दमनके लिये

दुद्धर्ष अर्ज्जुनको भेजा। अर्जुनने बातकी बातमें सारे कौरवोंको मार भगाया। यहाँतक कि उन्होंने कौरवराज दुर्य्योधनका मुकुट और कर्ण दुःशासनके बढ़ियाँ वस्त्र उतार लिये। महाराजा विराट्के गोधनकी रक्षा पूर्णतः हुई। उन्होंने अपने पुत्र उत्तरके मुखसे अर्जुनकी बहादुरीका परिचय पाकर उन्हें यथेष्ट पुरस्कृत किया।

अनन्तर पाण्डवोंने विराट् नगरका वास छोड़ उपप्लव्य ग्राममें आकर कौरवोंके साथ संधि–संस्थापनकी चेष्टा की। भगवान् कृष्ण पाण्डवोंकी ओरसे दूत बनकर हस्तिनापुर गये। उन्होंने दुर्य्योधनसे पाण्डवोंका सन्देस कहा, किन्तु पापात्मा दुर्य्योधनने उस शुभ प्रस्तावकी तनिक भी परवाह न की। फिर केवल परवाह ही नहीं, वरन् उसने पाण्डवोंको भला बुरा कहनेमें भी कोई कसर नहीं रखी।

इन सब बातोंको सुनकर धृतराष्ट्र बेहद डरे! उनकी नींद तथा अन्यान्य सुख-सुभीतोंमें खलल पड़ गया। एक दिन उन्हें अनेक चेष्टायें करनेपर भी नींद न आयी। आखिर रातमें ही उन्होंने महात्मा विदुरको बुलाया। विदुरके आनेपर अन्धराज धृतराष्ट्रने उनसे कहा—“भाई विदुर! कुछ देर हुई, कि—संजय आया था। उसने भाँति भाँतिकी उक्ति और युक्तियोंका प्रयोगकर मेरा तिरस्कार किया और कहा, कि—“तुम पुत्रमोहके वशीभूत हो कर्त्तव्य विमुख हो रहे हो और ऐसे प्रयत्न कर रहे हो, कि

कथनका क्या मतलब है ? और कल जो सभामें युधिष्ठिरका सन्देशा सुनाया जायगा ; उस सन्देशमें युधिष्ठिरकी ओरसे कौनसा भाव प्रकट किया जायगा इत्यादि न जान सकनेके कारण मारे चिन्ताके मेरा सारा शरीर जल रहा है। नींदका कितनी ही आवाहन करता हूं, किन्तु वह किसी तरह भी पास नहीं आना चाहती। अशान्त मन भाँति-भाँतिकी कुकल्पनाकर मुझे व्यस्त किये डालता है। कृपाकर तुम इन अशान्तियोंसे मेरी रक्षा करो। मेरा विश्वास है, तुम्हारे सिवा मेरा शान्ति-विधान और कोई न कर सकेगा।"

विदुरने कहा—"महाराज! आप यह कैसी बात कह रहे हैं? आपको निद्रा न होनेकी बात सुनकर मुझे आश्चर्य होता है, कारण कि रात्रिमें जागरण उन्हींको करना पड़ता है, जो पीड़ित, हृतसर्वस्व, प्रवासी, साधन और सहायताहीन तथा चोर होते हैं। आपकी अवस्था तो ऐसे व्यक्तियोंसे अति उन्नत है। किन्तु शान्ति न होनेकी बात ठीक है। आपने दुरात्मा दुर्य्योधनके हाथमें राज्य-भार सौंपकर स्वयमेव अशान्तिको खरीदा है। आपको तो यह बात भले प्रकारसे ज्ञात है, कि जो व्यक्ति आत्म-ज्ञानी हैं, निन्दा-स्तुति शून्य और धर्म परायण हैं, संसारमें पंडित लोग वे ही हैं। क्रोध, घमण्ड, अशिष्ट, अविनय, हिंसा और द्वेश जिसका स्वप्नमें भी स्पर्श न करें, पण्डित और ज्ञानी वही कहलाता है। जो लोग किसी कार्यको आरम्भ करनेसे पहले उसका शुभाशुभ परिणाम विवेक द्वारा भले प्रकारसे विवेचित

कर लेते हैं, अन्धा धुन्ध या बिना विचारे किसी कार्यमें हस्तक्षेप नहीं करते, सच्चे पण्डित वे ही हैं। जो अप्राप्य विषय या वस्तुको पानेकी स्वप्नमें भी कामना नहीं करते, नष्ट वस्तुके लिये अधिक या न्यून किसी प्रकारका शोक नहीं करते एवं जिन्होंने अपनी समस्त इन्द्रियोंको वशमें कर रखा है, वे ही सच्चे पंडित हैं। जो अपने सुखकालमें हर्षित, दुःखमें दुःखी न हो सदा अविचलित भावसे अपने जीवनके कर्त्तव्योंका पालन करते रहते हैं, सत्य बात कहनेमें अकुण्ठित और मिथ्या भाषणमें कुंठित रहते हैं, ज्ञानवान् व्यक्ति कहलानेका अधिकार उन्हींको प्राप्त हैं। जिनमें यथेष्ट प्रतिभा एवं नवीन और साधु उपाय सोचनेकी क्षमता रखनेवाली तीक्ष्ण बुद्धि है, पण्डित होनेका हक उन्हींको है एवं उन्हें अशान्ति तथा अनिन्द्रा कभी नहीं सता सकती।

"राजन्! जो व्यक्ति अन्याय और अधर्मको अवलम्बनकर धनलाभकी कामना किया करते हैं, मित्रोंकी भलाईके लिये झूठे वाक्योंका व्यवहार तथा निषिद्ध आचरण किया करते हैं, इच्छाके प्रतिकूल मानवी भावनाके विरुद्ध वस्तुओंको पानेकी कामना किया करते हैं, संसारमें मूर्खके नामसे प्रसिद्धि उन्हींको प्राप्त होती है। जो कर्त्तव्य-विमुख, समस्त विषयोंमे संशय-युक्त और विवेक विहीन हैं, वे ही लोग मूर्ख कहलाते हैं एवं अनिद्रा भी उन्हींपर आक्रमण किया करती हैं।

"जो लोग अविश्वासियोंपर विश्वास और विश्वसियोंपर

साधारण वस्तुका भी लोभ करते हैं, नीतिकारोंने हस्तिमूर्ख उन्हींको बताया है।

"महाराज! देखिये, एक व्यक्ति पाप कर्म करता है, किन्तु इस पाप कर्मके फलको भोगते बहुत से लोग हैं। वे फल भोगी लोग तो फल भोगनेके बाद उस पापसे छुटकारा पा लेते हैं किन्तु पापका निस्तार फल भोगनेपर भी नहीं होता। तिसपर तमाशा यह कि पापीकी वह इच्छा भी फलीभूत नहीं होती, कि जिसके लिये वह पाप करता है। बुद्धि परमात्माका एक ऐसा विचित्र दान है, कि इसीके द्वारा पाप और पुण्यके कार्य अनुष्ठित होते हैं। किन्तु ये सब विवेक और अविवेककी अपेक्षा रखते हैं। आप विवेक द्वारा हित और अहितकी विवेचना पूर्वक साम, दाम, दण्ड और भेदसे शत्रु और मित्रोंको वशीभूत कीजिये। रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द इन पाँचोंको जीतकर आप मन्त्री, मित्र, कोष, राष्ट्र, दुर्ग और बल (सैन्य) इन छहोंको वशीभूत कीजिये। जूआ, सुरापान, कटुवाक्य, कठोर दण्ड और अर्थदोष इन कितने एक अपकार्यों-का राज्यसे बहिष्कार कीजिये। आपको सुख प्राप्त होगा।

यदि क्षमावान् व्यक्ति सदा क्षमाका सदुपयोग करें; तो उन्हें कोई कभी दोष नहीं दे सकता। क्षमा ही परम मङ्गल है, क्षमा ही उत्तमा शान्ति है, विद्या परम तृप्ति और अहिंसा बहुत सुखों-का आकर है। कमजोर राजा और अप्रवासी ब्राह्मण नरकके कीट हैं। वे कभी प्रतिष्ठा या सम्मान नहीं पा सकते! जो

असमर्थ और दरिद्र होकर भी दीनताका अवलम्बन नहीं करते, उन्हींकी चिन्ता और अनिद्रा रूपिणी व्याधि कभी दूर नहीं होती।

काम, क्रोध और लोभ ये तीनों नरकके तीन द्वार हैं। पराये धनको गपक बैठना और मित्रोंका परित्याग करना, ये दोनों ही भयानक दोष हैं ; ऐसे दोषोंसे प्रायः समस्त मनुष्योंको दूर रहना चाहिये। जो व्यक्ति शरणागत होकर यह कहे, कि "मैं आजसे आपका हुआ," उसकी रक्षा स्वयं आपत्ति-ग्रस्त होकर भी करनी चाहिये।

ऐश्वर्य्य, कामी पुरुषोंकी जड़ता, क्रोध, आलस्य और दीर्घ सूत्रतासे सदा अलग रहना चाहिये। सत्य, दान करनेकी प्रवृति, परिश्रम, किसीकी निन्दा स्तुति न करना, एवं क्षमा और दयाका अवलम्बन करना ही कल्याणकारी हैं। दंभ, मोह, मात्सर्य्य पापकर्म्म, दुष्टता, लोगोंके साथ शत्रुता करना, दुर्जनोंके साथ वाग-वितण्डा करना आदि दुर्गुण हैं। इनका परित्याग कर देनेसे सुखका उदय होता हैं। सत्यनिष्ठ, दानशील, और विशुद्ध स्वभाव व्यक्ति ही प्रधानता और प्रसिद्धि प्राप्त करते हैं।

महाराज! आप चन्द्रवंशके चूड़ामणि धर्तात्मा पाण्डवोंका राज्य उन्हें ही लौटा दीजिये। इससे आप सुखी और प्रसन्न होंगे। आपकी प्रजा, जो दिन रात राज्याधिकारियोंकी निन्दा किया करती है, पाण्डवोंका न्यायतः प्राप्य राज्य, उन्हें मिलजानेका सम्बाद पाकर आपकी अशेष प्रशंसा करेगी।" महात्मा विदुरने इस प्रसंगपर महाराजा धृतराष्ट्रसे जो जो बातें

कहीं बड़ी महत्व पूर्ण हैं। उन्हें लोग विदुर नीतिके नामसे जानते हैं। इस पुस्तकके परिशिष्ट भागमें हमने उनका अक्षर अक्षर संग्रह कर दिया है।

किन्तु जिस व्यक्तिका हृदय मोहसे भ्रान्त हैं, उसपर ऐसे उपदेश कठिनतासे असर डालते हैं। अन्धराज धृतराष्ट्रने विदुरके उक्त सत्परामर्श और प्रबोधमय उपदेशपर कर्णपात भी नहीं किया। यह देख महात्मा विदुर अतीव विरक्त हुए और धृतराष्ट्रसे फिर कहने लगे—"महाराज! जो व्यक्ति धर्म्मार्थ त्यागकर स्वार्थका वशीभूत बन जाता है। उसके धन, प्राण और परिवारकी रक्षा मुश्किलसे होती है। राजन्! जीभको वशमें रखना बड़ा कठिन है। मैंने आपको बहुत कुछ वाक्यवाणोंसे विद्ध किया है। क्षमा करें।

दुर्बुद्धि दुर्य्योधनने प्रचण्ड अग्निमें अपना हाथ डाल दिया है। याद रखिये, निश्चयही कौरव वंशका नाश हो जायेगा। महाराज धर्म नित्य है और सुख दुःख अनित्य होते है। अनित्य वस्तुका परित्यागकर नित्य वस्तुका ग्रहण करना ही बुद्धिमानोंका काम हैं। विद्वानोंने कहा है "सन्तोषः परमं धनम्" उस सन्तोषका प्राप्त कर लेना ही महा लाभ है। संसार आवागमन शील है। एक दिन आता है कि हरएक मनुष्य सारे भाग ऐश्वर्य्य और राजपाटोंका परित्यागकर यमपुरीको चले जाते हैं। जन्मता है, वह मरता है। पिता पुत्रको श्मशान ले जाते हैं और पुत्रगण पिताके शवमें आग लगाते हैं। कुटुम्बियोंमें वह धन, जो एक समय

अनेक छल, प्रपञ्च, मनुष्य-हत्या, सत्य हत्या और असत्य बोलने द्वारा पैदा किया गया था; बराबर भागोंमें बंट जाता है, किन्तु जिसने उक्त धन पैदा किया था, वह अपने साथमें उसमेंकी एक कौड़ी भी न लेकर खाली हाथ श्मशानमें जाकर भस्म हो जाता है। साथ क्या जाता है? पाप और पुण्य। इसलिये हे महाराज! आत्मरूप जो नदी है, कि जिसका तीर्थ पुण्य है, जल सत्य है, तट धैर्य्य है और दया तरंगे हैं, उसमें स्नानकर अपनेको पवित्रात्मा बताइये। आप हृदय-नेत्रों द्वारा हाथ पाँव मन द्वारा, आंख कान एवं कर्म द्वारा मन और वाक्योंको शुद्ध कीजिये आपका सब प्रकारसे कल्याण होगा। जितने अमङ्गल हैं, सब नष्ट हो जायेंगे। अनिद्रा व्याधि दूर हो जायगी।

महाराज! मैं हाथ जोड़कर अत्यन्त विनयके साथ अनुरोध करता हूं, कि आप कृष्णभक्त बनिये। सदा कृष्ण नामका जाप कीजिये, भगवान् कृष्ण आपका कल्याण करेंगे। आप जो यह शिकायत करते हैं; कि मुझे रातको नींद नहीं आती। आपकी यह शिकायत दूर हो जायगी। चित्त शान्ति पायगा। सारांश, कि कृष्ण नामके जापका अनन्त फल है। जो मनुष्य कृष्णनाम रूपी महा मन्त्रका जाप करता है, वह कुछ ही समय बाद अर्थ-ग्राही ज्ञानी बन जाता है। उसमें प्रेमकी शत धारायें ओत प्रोत भावसे बहती रहती हैं। अपठित लोग नामकी महिमासे अवगत नहीं होते, किन्तु नाम जापमें उनका प्रगाढ़ विश्वास होता है। अतएव उनके पक्षमें "अर्थहीनं जपं नष्टम्।" वाक्य असिद्ध हो

जाता है और उन्हें जापका फल प्राप्त होता है। भगवान्के नामका तेज अज्ञान-अन्धकारको नष्ट कर देता है। एवं उज्ज्वल तथा निर्मल प्रेमका हृदयमें प्रकाश कर देता है। यदि हृदयमें प्रेमका निवास है, तो एक न एक दिन भगवन् भक्तके वशी अवश्य बनेंगे। इस प्रेम-रसमें अनेक स्वाद हैं। जिसने उसको आस्वादन किया है, वही प्रेमकी महिमाको जानता है और वही एकदिन भगवान्के दर्शन करता है"

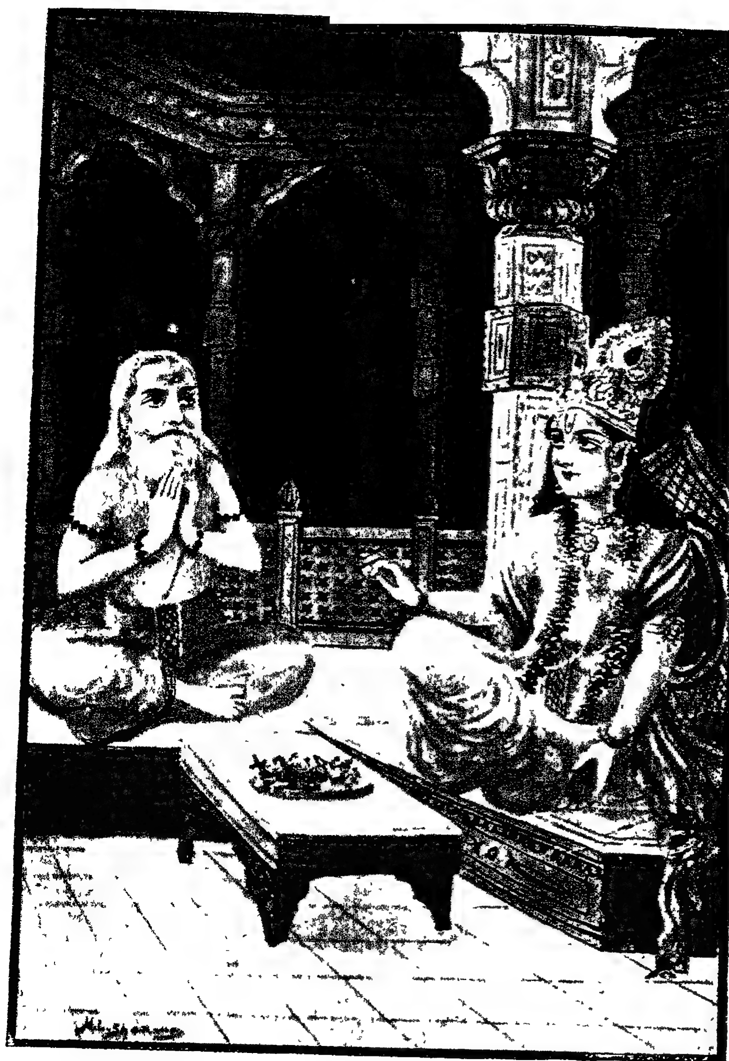
धृतराष्ट्रने कहा—"भाई विदुर! मेरे मरनेके दिन निकट हैं इसीसे नींद नहीं आती और इसीसे आपकी प्रयोग की गयी शुभ सलाहरूपी औषधियाँ काम नहीं करतीं। यह सुनो, कल-कण्ठ पक्षी प्रभातीका मंगल गान कर रहे हैं। भाटोंने स्तुति पाठ करना आरम्भ कर दिया। अब आप घर जायें।"

आज्ञा पाकर विदुर धृतराष्ट्रको प्रणामकर घर चले आये और आते समय कह आये—"महाराज! याद रखें भगवान्की इच्छाके विरुद्ध कोई कुछ काम नहीं कर सकता। विद्वान् लोग कह गये हैं, कि—"जब भगवान् कुपित होकर प्राणीको मारना चाहते हैं, तो किसीमें भी वह शक्ति नहीं, जो उसे बचा सके। और जब भगवान् प्रसन्न होते हैं तो किसीकी सामर्थ्य नहीं है जो उसे मार सके। इस वाक्यका एक विन्दु भी तो असत्य नहीं है।"



सप्तम परिच्छेद ।

भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवोंके दूत बनकर हस्तिनापुर आये। दूत बनकर आनेका उद्देश्य था कौरवों और पाण्डवोंमें सन्धि-स्थापित कराना। श्रीकृष्ण सबसे पहले धृतराष्ट्रसे मिले! धृतराष्ट्रने भगवान्का यथेष्ट आदर सत्कार किया। कुशल मंगल पूछनेके बाद धृतराष्ट्रसे अनुमति लेकर भगवान् विदुरके यहाँ गये। विदुरने अभ्यागत अतिथिकी बड़े आदर और आन्तरिक भक्तिके साथ अभ्यर्थना की। एवं भक्ति विह्वल चित्तसे कहा—"आपके आगमनसे मैं परम प्रसन्न हुआ हूं! मेरी यह पर्ण-कुटीर पवित्र हो गयी है। किन्तु आपका यहाँ आना उचित नहीं हुआ। दुर्योधन अति क्रोधी, अति मन्दबुद्धि और अत्यन्त अभिमानी है। मान्य व्यक्तियोंका मान-हरण करनेमें अकुण्ठित है। वह विद्वानोंके उपदेश नहीं सुनता, धर्मका शासन नहीं मानता, नीतिका उल्लङ्घन करनेमें वह तनिक भी नहीं हिचकता। दुष्टता और कुवाक्य कहना, उसका नित्य कर्म है! साराँश, कि उसके जैसा निर्बोध-मूर्ख और दुष्टग्रहग्रस्त प्राणी, दूसरा भी कोई होगा यह कहना कठिन है। यदि कोई व्यक्ति उसका कुछ उपकार करे तो बदलेमें प्रत्युपकार करना तो दूर रहा, वरन वह स्वयं अपने हाथोंसे उसका अपकार करता है। दुर्योधन अकृतज्ञ, कामात्मा, मिथ्याप्रिय, स्वेच्छाचारी, दाम्भिक और अव्यवस्थित चित है। यदि आप उसके कल्याणके लिये प्रस्ताव करेंगे



विदुर और श्रीकृष्ण।

आपके आगमनसे मैं परम प्रसन्न हुआ हूं ! मेरी यह पर्ण कुटीर पवित्र हो गयी है।

दुर्गा प्रेस, कलकत्ता]

[देखिये—पृष्ठ संख्या ७२

तो वह उसकी कुछ भी परवाह न करेगा। भीष्म, कर्ण, द्रोण अश्वत्थामा और जयद्रथ आदि वीरोंकी सहायतासे जय पानेकी आशा उसके हृदयमें जड़ पकड़ गयी है। इसलिये शान्तिस्थापन होना असम्भव है। अदूरदर्शी दुर्योधन पार्थिव—बल संग्रहकर गर्वित हो गया है। समझता है, कि पाण्डव मुंहसे भले ही युद्ध करनेकी बात कहें, किन्तु युद्धके समय मारे डरके सम्मुख संग्राम-में एक पग भी न बढ़ सकेंगे। उसकी यह दुराशा आजकल अत्यन्त वृद्धि पर है। उसका विश्वास है, अकेला कर्ण ही समस्त शत्रुओंको जीत लेनेमें काफी हैं। मुझे तो भरोसा नहीं, जो आपकी यह बन्धुत्व-स्थापनकी चेष्टा सफल हो जाये। अशिष्ट, दुर्मति दुर्य्योधन और दुःशासनादिके आगे आपके हितवाक्य फलदायक हो सकेंगे? दुर्य्योधनका विश्वास है, कि यदि एक बार देवराज इन्द्र समस्त देवताओंके साथ समर करने आये, तो वह भी उसे पराजित नहीं कर सकते। उसकी हस्तिसेना, अश्वसेना और पैदल-सैन्य सब विपद् शून्य हैं। वह समझता है, कि सारी वसुन्धरा ही उसके वशमें है। इसलिये बिना युद्धके शान्ति स्थापित होनेकी आशा नहीं है। आप शिष्ट हैं, किन्तु आपकी शिष्टताका महत्व दुर्य्योधनका दुष्ट-समाज नहीं समझता। अतएव आपका वहां जाना ठीक न होगा। भयसे मेरा समस्त शरीर कांप रहा है।”

भगवान् कृष्ण विदुरकी उक्त बातें सुनते सुनते सो गये। यह देखकर महात्माजीने भी विश्राम करनेकी चेष्टा की।

रात्रिके व्यतीत होनेपर, प्रभातके साथ साथ केशवने भी शय्या त्याग की ! विदुर पहलेसे ही जाग उठे थे। दोनोंने प्रातः कृत्य समाप्तकर कुरु-सभामें गमन किया। सभास्थलमें जाकर कुरुपति दुर्य्योधनके असद्-व्यवहारसे भगवान् बड़े विरक्त हुए। विदुरने आपको शान्त किया। किन्तु भगवानका वह शान्त होना ऐसा था, जैसे भभकती आगका जल द्वारा बुझना। आप बोले "हे विदुर ! आपके शान्त वचनोंका मैं उल्लंघन नहीं कर सकता। इसीसे मैंने कौरवोंके अपराधोंको क्षमा कर दिया। अन्यथा मैं उस व्यवहारका उन्हें यथोचित बदला देता। खैर अब भी वे शीघ्र ही अपने पापोंका फल भोगेंगे।"

जिस समय सभाभवनमें भीष्मादि समस्त कौरव और द्रोण, कृप तथा कर्ण आदि कुरुकुलके हितचिन्तकोंने यथा योग्य आसन ग्रहणकर लिया था एवं मूल विषयपर बात छिड़ गयी तब भगवान्ने बीच सभामें खड़े हो कर दुर्य्योधनको संबोधित करते हुए कहा "दुर्य्योधन ! मैं तुम्हारी समस्त दुष्ट अभिसन्धियोंको समझता हूँ ! खैर मुझे उन समस्त अभिसन्धियोंसे कुछ भी सरोकार नहीं हैं। तुम और सभाके सारे लोग सावधान होकर सुनो। यदि कौरव लोग पाण्डवोंका न्यायतः प्राप्त राज्यका आधा हिस्सा न दें, तो न सही। वे हैं तो इन्हींके भाई बन्धु ! अतएव उन्हें कौरवोंकी अधीनतामें भी रहना स्वीकृत है। कौरव लोग उन्हें केवल पांच ग्राम ही देदें एवं समस्त राज्यका स्वयं उपभोग करें। उन पांचों ग्रामोंमें इन्द्रप्रस्थ, कुशस्थल, वारणावत, कौरवनगर

और सिद्धि ग्राम ये पांच स्थान होने चाहिये। लड़ाई झगड़ेको कोई जरूरत नहीं। पाण्डव लोग शान्ति प्रिय हैं। वे अपने भाइ-योंसे हो युद्ध करना उचित नहीं समझते। आप लोग उक्त पाचों ग्रामोंको दे कर उनके साथ संधि स्थापित कर लें। मेरी इच्छा है, कि कौरव और पाण्डव दोनोंका ही कल्याण हो। युद्ध-का परिणाम अति भीषण है। आप लोग सब तरहसे समर्थ हैं। पाण्डव विचारे, वर्षों तक तो निःसहायोंकी भांति बन-बन और जङ्गल-जङ्गल टक्करें मारते फिरते रहे हैं। बलहीन अतएव युद्ध करनेमें असमर्थ हैं। फिर स्वजाति बान्धवोंका बध करना घोर अधर्म है। समस्त शास्त्रोंका यही एक स्वरसे कथन है, कि जाति-बध महापाप है। इसलिये आपलोग भी युद्धसे घृणा कीजिये।"

भगवान् कृष्ण अभी अपनी बातको पूरा भी न कर पाये थे, कि इसो समय क्रोधसे अस्थिर हुआ दुर्योधन अपनी जगहसे उठकर कहने लगा "केशव! आप यह कैसा प्रलाप कर रहे हैं। मैं तो बिना युद्धके पाण्डवोंको उतनी भूमि भी न दे सकूंगा, कि जितनी सुईके अगले तीखे हिस्सेसे नापी जा सकती है। मेरी बातें अटल होती हैं। मेरी प्रतिज्ञा है कि सूर्य्य यदि पूर्व दिशासे उगना छोड़कर पश्चिमसे भले ही उगने लगें, किन्तु मेरे मुंहसे निकला बचन अपने अर्थपर सदा अचल रहेगा।"

भगवान् दुर्योधनकी ऐसी हठको देखकर फिर सभामें न बैठे रहे। तत्काल अन्धराज धृतराष्ट्रके पास गये और बोले "राजन्! मैं कौरव और पाण्डव दोनोंका हित करनेकी दृष्टिसे

दूत बनकर आपके पास आया था; किन्तु दुःख है, मेरा उद्देश्य सिद्ध न हो सका। दुर्य्योधनने मेरी एक भी बात नहीं मानी। फिर यही नहीं; मैंने सुना है, कि वह मुझे कैद करना चाहता है। राजन्! बताइये तो, मैंने आप लोगोंका क्या बिगाड़ा है? सच तो यह है, महाराज! यह आपहीका मुलाहिजा है, जो मैंने अब तक उस पर क्रोध नहीं किया। अन्यथा, क्या दुर्य्योधनकी इतनी ताकत थी, जो इस समय वह ऐसा इरादा भी कर पाता? हा! हा! हा! कैसी स्पर्द्धा है! कैसी हास्यास्पद चेष्टा हैं। एक क्षुद्र पशु प्रचण्डकेशरीका शिकार करना चाहता है। एक नगण्य नागिन गरुड़पर आक्रमण करना चाहती है। सुनिये महाराज! मैंने केवल आपकी वुढ़ौतीको देखकर ही दुर्य्योधनके सारे अपराधोंको क्षमा किया हैं। अन्यथा क्या पाण्डव लोग अनन्त अत्याचार सहकर भी बारह वर्ष तक बन बन मारे फिरते? अथवा क्या उन्हें साल भर तक अपनेको हत्यारे अपराधियोंकी तरह छिपाना पड़ता। आप लोगोंका भविष्य बताता है, कि शीघ्र ही एक घोर युद्ध होगा और उसमें भारतके समस्त राजाओंके साथ अनन्त अक्षौहिणी सेनाओंका नाश होगा। इस कौरव पाण्डवोंके युद्धसे समस्त भरत-भूमि रुधिरसे लाल हो जायगी। पाण्डवों द्वारा सारे कौरव मारे जायेंगे और इस हत्याका पाप तीन आदमी योंके मत्थे मढ़ेगा। एक दुर्य्योधन, दूसरे दुःशासन और तीसरे शकुनी। मैं अपना कर्त्तव्य पूर्ण कर चुका। अब मेरे हाथकी कोई बात नहीं। आप जाने या आपके पुत्र जाने।"

इतना कहकर यदुपति भगवान् धृतराष्ट्रके पाससे सदर्प और सक्रोध उठकर विदुरके घर चले आये। वहां आकर फुआ श्रीमती कुन्तीदेवीसे कहा—"युद्ध अनिवार्य्य है। शीघ्र ही कौरव और पाण्डवोंके बीचमें भीषण समरानल धधकेगा। भक्त विदुर! आओ, तुमसे आलिङ्गनकर अब मैं एक भीषण यज्ञके अनुष्ठानमें प्रवृत्त होऊँ।" एक दिन विदुरने सुना, कि दुर्य्योधनने क्रोधसे अपने ओठोंको कँपाकर यह कहा है, कि यह दुष्ट स्वभाव दासी-पुत्र विदुर शत्रुओंकी सहायता कर रहा है, मेरे विरुद्ध मेरी सारी बातोंको शत्रुओंपर गुप्त रूपसे प्रकट कर रहा है, यह आदमी श्मशान स्वरूप और साक्षात् अमङ्गलकी मूर्ति है। इसे लूटकर देश निकाला दे देंगे।—तब वे वहाँ अधिक समय तक न रहे और कृष्णके चले जानेपर तत्काल हस्तिनापुरसे बाहर निकल उन तीर्थोंकी यात्रा करने चल दिये, जहाँ भगवानकी मूर्त्तियाँ रुद्र, ब्रह्मा और विष्णुका नाम धारणकर उस विश्व-नियन्ताकी महिमाका संसारको ज्ञान करा रही हैं। जहाँ संसार-त्यागी साधुओंका समय समयपर समागम होता रहता है। आपके साथ कोई नहीं था, अकेले ही अनेक वन, उपवन, पर्वत, नद, नदी, पुरी, पुण्यतीर्थ और पवित्र-क्षेत्रोंमें घूमते फिरते थे। अपने इस भ्रमणकालमें महात्माजीने 'हरितोषण' व्रत अवलम्बन किया था। वे प्रत्येक तीर्थमें स्नान करते थे। राजबन्धु होकर जमीनपर सोते थे। बल्कलोंसे उनका शरीर ढँका हुआ था। उन्हें अपने शरीरकी कुछ भी परवाह न थी।

सिर और दाढ़ीके बाल मुनियोंकी भाँति, ब्रती तपस्वियोंकी भाँति बढ़ गये थे। यहांतक कि—वे आत्मीय स्वजन—जाने पहचाने आदमियोंके भी पहचाननेमें नहीं आते थे। इस प्रकार घूमते फिरते भक्तराज विदुर प्रभासतीर्थमें पहुंचे। वहाँ कुछ दिनों ऋषि मुनियोंके साथ रहकर, अनन्तर सौराष्ट्र, सौवीर और मत्सय देशोंमें परिभ्रमण पूर्वक यमुनातटपर जाकर उपस्थित हुए। उस स्थानपर परमभगवद्भक्त उद्धवके साथ उनका साक्षात् हुआ। उद्धव भगवान् कृष्णके अनुचर थे। वे अति शान्त मूर्ति और नीति-शास्त्रके परम पण्डित थे। विदुरने उन्हें प्रभूत प्रेमके साथ आलिंगन किया। यादव और कौरव-पाण्डवों-की कुशल वार्त्ता पूछी। उद्धवने कुशल प्रश्नादिका उत्तर देकर कहा,—"कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध छिड़ गया। आपके भतीजोंकी शक्ति और सामर्थ्य अतुलनीय है। दोनों पक्षोंमें जिन राजाओं और उनकी सेनाओंने योगदान किया है, उनकी संख्या गणनातीत है। उन सबके पदभारसे पृथ्वी डगमग करती है। कर्ण, दुःशासन और शकुनीकी सलाहोंसे ही दुर्य्योधन इस महायुद्धमें प्रवृत्त हुआ है। मेरी समझमें इस युद्धका परि-णाम बड़ा भयानक होगा।"

यह सुनकर महात्मा विदुर कहने लगे—"प्रिय उद्धव! इस सम्बन्धमें हमें और आपको चिन्ता करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं है। जिन्होंने इस समस्त सृष्टिकी रचना की हैं, वे ही अपनी सृष्टिकी रक्षाके लिये उचित व्यवस्था करेंगे। आप क्या नहीं

जानते, कि समस्त कारणोंके आदि कारण सृष्टिकर्त्ता श्रीकृष्णने अकेले ही समस्त ब्रह्माण्डकी सृष्टि की है, वे अकेले ही इसका पालन करते हैं और अब अकेले ही इसका संहार करेंगे ! उन्होंने किसीको भी इस कामके लिये नहीं रचा, जो उनके अनुष्ठित कार्य्योंपर विचार करे। जब जहाँपर जिसकी आवश्यकता होती है, तभी वे उस स्थानपर उसका अभाव दूर कर देते हैं। वे सर्व-कर्त्ता हैं—सचराचरके स्वामी हैं।

उद्धवने कहा, —"भक्तराज विदुर ! आपका कथन यद्यपि सर्वथा ठीक और शास्त्र-संगत है, तथापि संसार और लोक-समाजकी गति देखकर मुझे अतीव चिन्ता हो रही है। यह देखो सत्य, न्याय, धर्म, तेज, क्षमा, धैर्य्य, शौच, यज्ञ और दान इत्यादि अबतक नित्य कर्म्म समझे जाते थे। अभय, अहिंसा, अक्रोध, विद्रोह, कटुबचन न बोलना, किसीकी निन्दा न करना और चालाकी न दिखाना आदि साधु आचारण समाजके शरीरिक आभूषण थे। न्याय और धर्मकी सीमाका उल्लङ्घन होता देखकर व्यक्तिमात्र ही रुष्ट और व्यथित हो जाता था। फिर केवल व्यथित ही नहीं, यथासाध्य उस उल्लङ्घन-चेष्टाका प्रतिकार करता था। पर अब धीरे धीरे इस पुरानी प्रथापर लापरवाही दिखायी जाने लगी। हिन्दू जातिका तेज, बल और पराक्रम नष्ट होता जाता है। धर्म्मका ह्रास और अधर्म्मकी बृद्धि होती जाती है। संसारमें पापका राज्य फैलता जाता है और पुण्य-प्रवृत्ति अपना अधिकार समेटती जाती है। समस्त मनुष्य, आँखें मूँदकर भले-

बुरेकी विवेचनासे शून्य होकर समाजके समय-स्रोतमें बहे चले जा रहे हैं। यह चिन्तनीय विषय नहीं तो और क्या है?"

महात्मा विदुरने कहा,—"सुनो उद्धव! थोड़े दिनोंका रोग ओषधिद्वारा सहजहीमें दूर हो जाता है। अभी पाप-रोगका भारतमें अधिक प्रसार नहीं हुआ है। अतः यदि उचित ओषधिकी तदबीर हो, तो वह शीघ्र दूर हो सकता है। मैं यह बात अच्छी तरहसे जानता और उसपर विश्वास करता हूं, कि—"धर्म्म ही समाजकी मूल भित्ति है। धर्म्मका अवलम्बन करनेपर, पापसे सम्बन्ध त्याग देनेपर, समाज फिर उन्नत और तेज सम्पन्न हो सकता है। धर्म्मके सम्बन्ध, विवाद, तर्क-वितर्क, काल्पनिकता, आडम्बरपन, कपटता, शठता और अभिमानको बिना त्याग किये समाजका कल्याण न हो सकेगा। वह धर्म्मकी ओर अपना पैर न बढ़ा सकेगा। झूठ और धोखेबाजीकी राक्षसी मूर्त्तिको समाजके सज्जित सिंहासनपर बैठाकर उसकी पूजा करनेसे देशमें शान्तिका निवास न रहेगा। बगुला-भक्त और बिलावकी वृत्ति रखनेवाले पापी लोग ही समाजके घोर शत्रु हैं। उन्हींके द्वारा समाज दिन-दिन पातालमें बैठता जाता है। उनकी भेद-बुद्धिसे ही समाजमें फूट और वैरका प्रवेश होता है। इन लोगोंको बिना सम्पूर्णरूपसे निर्मूल किये समाज और देशमें शान्तिका स्थापन होना कठिन है। अशान्ति जलमें बहता बहता समाज एक दिन गम्भीर अतल पाप-समुद्रमें डूब जायगा। समाजिक लोग अन्तः-सार शून्य, डरपोक और निष्कर्म्मा बन जायेंगे। सारे बन्धन और

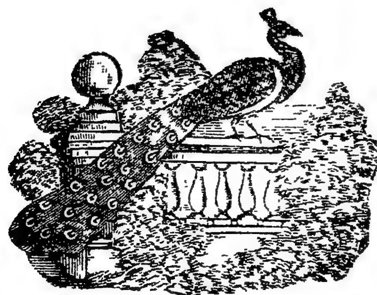
श्ट्ट शृंखलायें छिन्नभिन्न हो जायेंगी। उद्धव! तुमसे क्या कहूं? कहते हुए दुःख होता है। आँखोंके आँसू छातीको भिगोये देते हैं। आजकलके समाजमें ऐसे ही लोगोंकी संख्या अधिक हैं, जो कहते कुछ हैं—दिखाते कुछ हैं और करते कुछ हैं। उनका दिखाना लोकके अनुकूल हैं और बर्त्ताव मनमाना है। बहुतसे आदमी पाप-कर्म करके भी ढोंग और आडम्बरोंके प्रभावसे—मिथ्या वातुलताके जोरसे अपनेको जनताके सामने निर्दोष साबित कर देते हैं। फिर निर्दोष ही नहीं, अपना धार्म्मिकके नामसे परिचय भी देते हैं। इनमें जो कुछ थोड़ीसी शक्ति होती है, उसका ये दुर्व्यवहार करते हैं। इनके अत्याचार और उपद्रवोंके भयसे कोई मुंह खोलकर सच्ची बात भी नहीं कहने पाता। धर्म विरुद्ध, शास्त्र-विरुद्ध और नीति-विरुद्ध समस्त कार्य्योंके प्रवर्त्तक पाखण्डी, समाजकी छातीपर खड़े होकर अनायास घमण्डके साथ पापकर्म्म और झूठवाक्य कह जाते हैं। आत्मीयता, बन्धुता, और प्रेम-स्नेह आजकल स्वार्थ और मुंह देखेके हैं। गरीब, पुण्यात्मा और सच्चे व्यक्तियोंकी सहायता करने या उनके साथ सहानुभूति रखनेका संसारसे नाम ही जाता रहा। वे ही आजकलके लोगोंके गैर होनेपर भी अपने हैं, जिनसे कुछ मतलब पूरा हो सकता है। जो अपने धर्म-विरुद्ध काम या मति-विरुद्ध बातमें हाँमें हाँ मिला देता है, वह पापी होनेपर भी धार्मिक है। कहो, कैसे दुःखकी बात है? वर्त्तमान समाज मानों झूठे ठग, चोर, धूर्त्त और शठोंका आश्रय स्थान बन गया है। अगम्यगामी, अभक्ष्यभोजी, दुष्टलोग

भी बाहरी आडम्बरोंसे साधु बनकर संसारको धोखा दे रहे हैं।

धर्मभय, समाजभय, राजभय आदि पहले मनुष्यको अनेक पापोंसे अलग रखते थे। किन्तु आज उन सब भयोंके कलुषित हो जानेसे--समाजके अपवित्र हो जानेसे, मनुष्योंको किसीका भी भय नहीं रहता। फलतः वे स्वेच्छाचारी बन जाते हैं। मनुष्यत्व, शीलता, न्यायपरता आदि सद्गुण मनुष्योंमें लुप्त हो जाते हैं। महात्माओंका कथन है,-"जिस समाजमें निर्दोष और उच्च आदर्श-के लोग अधिक होते हैं, वही समाज उन्नत होता है एवं जिस समाजके लोगोंमें श्रेष्ठ जीवन पानेकी आकाँक्षा नहीं है, पवित्र जीवन प्राप्त करनेकी कामना नहीं है, उस समाजकी उन्नतिकी आशा करना विडम्बना है। जिस समाजके पूज्य और शीर्षस्थानीय लोग प्रतिष्ठा पानेको स्वार्थसाधनके लिये तिलकातालके रूपमें वर्णन करते हैं और निरीह, धर्म प्राण तथा सरल चित्त अनपढ़ लोगोंको बरग़लाकर धर्मके नामपर अधर्मका अनुष्ठान करते हैं, मिथ्या, ठगने वाली बातोंसे लोगोंको उत्साहित कर उनसे धन ठग लेते हैं। जिस समाजके सिरपर व्यक्तियों द्वारा दस्युता, परपीड़न, और पराया सर्वनाश होना आदि पाप किये जाते हैं, वह समाज अति शीघ्र नाशके मुखमें जा पड़ता है या देशमें विद्रोह खड़ाकर देता है। दुरात्मा दुर्य्योधनने समाजके सर्वोच्च पदपर खड़े हो कर निरीह लोगोंपर जैसा दुर्व्यवहार किया है, वह कल्पनासे बाहर और दुर्बोध्य है। भाई उद्धव! जिस प्रकार व्याधिकी

यातनाके अन्त सीमापर विना उपस्थित हुए, उसकी प्रतिक्रया नहीं होती, उसी प्रकार समाज रोग भी विना अन्त सीमापर पहुंचे शान्त नहीं होता। उसमें परिवर्तन नहीं धरता। मुझे मालूम हो रहा है, कि वर्त्तमान समाजकी व्याधि अन्त सीमापर जा पहुंची है, इस कुरुक्षेत्रके युद्धके अन्तमें ही उसमें परिवर्त्तन होना आरम्भ हो जायगा। अतएव हमें उसके बारेमें इस समय विशेष चिन्ता करनेकी आवश्यकता नहीं है। आओ, एक बार यमुना जलमें स्नानकर भगवान्का नाम स्मरण करें।"

इतना कहकर महात्मा विदुर उद्धवका हाथ पकड़कर यमुना-में जा खड़े हुए और यथेच्छ स्नानकर हरिनामामृतका पान करने लगे।



अष्टम परिच्छेद ।



श्रीकृष्ण विदुरजीसे विदा ग्रहणकर पाण्डवोंके शिविरमें गये। जाकर उन्होंने दुर्य्योधनके दुर्व्यवहारका ज्यों का त्यों वर्णन कर दिया। उनके उत्तेजनापूर्ण वाक्योंको सुनकर भीमसेन क्रोध और क्षोभसे अस्थिर होकर खड़े हो गये। उन्होंने कहा "कृष्ण, मैं तुम्हारे इस विस्तृत वर्णनको नहीं सुन सकता। जब युद्धके बिना छीना हुआ राज्य मिलना दुष्कर है, जब युद्ध करना ही आवश्यक हो गया है, तब बेकार को बातोंमें समय खोनेकी क्या आवश्यकता! मैं तो शीघ्र ही इस विषयमें महात्मा विदुरकी सम्मति जानना चाहता हूं। उन्होंने हमें इस विषयमें क्या करनेका उपदेश दिया है, कृपाकर शीघ्रता पूर्वक वही सुनाइये।"

कृष्णने कहा—"विदुरका भी यही कथन था, कि युद्ध अनिवार्य्य है। और तो देखिये, दुर्य्योधनने महात्मा विदुरके साथ भी अच्छा व्यवहार नहीं किया। उसने उन्हें लूटनेके लिये अपने सिपाहियोंको हुक्म दिया था! विदुर इस हुक्मकी बातको जानकर स्त्री पुत्रोंको त्याग हस्तिनापुरीसे चले गये। वे युद्ध जब तक समाप्त न हो जायगा, तब तक घर न आयेंगे।"

यह बात सुनकर युधिष्ठिरने कहा—"कृष्ण! जब ऐसा ही है, तब मेरी समझसे भी इस समय हम सबको चुपचाप न बैठे रहना चाहिये। युद्धकी तय्यारियोंमें हस्तक्षेप कर देना चाहिये।"

इसके बाद युद्धकी घोषणा हुई। श्रीकृष्णने इस युद्धमें

अर्जुनका सारथ्य ग्रहण किया। एवं कुरुक्षेत्रके मैदानमें महायुद्ध आरम्भ हो गया। यह युद्ध अट्ठारह दिन तक चलता रहा और इन अठारहों दिनोंमें देशकी अठारह अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गयी जब कौरवोंके भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य, और अन्याय महारथीगण एक एक करके मारे गये, अकेला दुर्य्योधन ही रह गया, तो वह अपनी जान बचानेके लिये भागकर द्वैपायन नामक तालाबमें जा छिपा। किन्तु पाण्डवोंने उसे वहाँ भी न छोड़ा। अनेक उत्तेजन देकर बाहर निकाल ही दिया। बाहर आनेपर उसका और महावीर भीमसेनका गदा-युद्ध हुआ। इस गदा-युद्धमें दुर्य्योधन मारे गये। विजय-लक्ष्मीने पाण्डवोंके गलेमें वरमाला पहनायी। द्रौपदी और भीमसेनकी सारी प्रतिज्ञायें पूर्ण हुईं। उन्होंने युद्धमें दुःशासनकी छाती फोड़कर उसका रुधिर भी पिया और पापी दुर्य्योधनकी जंघा भी तोड़ गिरायी। साथ ही धृतराष्ट्रके सौ पुत्रोंका विनाश भी एकमात्र उन्हींके हाथोंसे हुआ। युधिष्ठिर इन्द्रप्रस्थके राजसिंहासन पर बैठकर भारत साम्राज्यके अधीश्वर हुए। विदुरकी भविष्यत् वाणी हाथों हाथ फली। भारतवासियोंने भी शास्त्रकी इस सत्य वाणीकी सार्थकता उपलब्ध की, कि—"यतो धर्मस्ततो जयः।" संसार-भर समझ गया, कि जिस व्यक्तिकी अभिलाषायें साधु और सच्ची हैं, दीन होनेपर भी उसके ईश्वर सहायक हैं।

युद्ध समाप्त हो जानेके बाद ही विदुर हस्तिनापुर आ गये। आकर उन्होंने धृतराष्ट्रको अपना शेष जीवन भगवानके नाम

स्मरणमें व्यतीत करनेका उपदेश दिया। वे राजपरिवारके प्रत्येक स्त्रीके पास जाते और हरएकके भ्रातृ, पति और पुत्र नाश जनित शोकके दूर करनेकी चेष्टा करते। उनके धर्मोपदेशोंको सुनकर सभीको शान्ति होती। धृतराष्ट्र और भाभी गान्धारीसे उन्होंने कहा—"इस संसारके सारे कार्य्य ईश्वरके इच्छानुसार होते हैं। मनुष्यका रोना और हँसना भी उसीकी इच्छाके अधीन है। बिना उसकी इच्छाके इस जगत्का एक पत्ता भी नहीं हिलता। अतः यह कुरुक्षेत्रका युद्ध भी उसीकी इच्छासे हुआ था। फिर उसके लिये शोक करके शरीर नष्ट करनेसे क्या लाभ होगा? भगवान जो भी कुछ करते हैं, वह संसारके हितके लिये। अतः इस महानाशसे भी संसारका उपकार ही होगा। भगवान्की इच्छामें बाधा पहुंचानेवाले हम कोई भी नहीं हैं।"

इसके बाद धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती, विदुर और सञ्जय आदि वन जानेकी तयारी करने लगे।

उन्होंने सबसे प्रथम नगरके समस्त ब्राह्मणोंको बुलाकर भाँति भाँतिके दान दिये। अन्नपात्र देकर राज्यके फकीर फुकरोंको सन्तुष्ट किया। जिस समय पाण्डवोंने उन सबके वन जानेकी बात सुनी, तब वे बड़े व्याकुल हुए। शीघ्रतासे पाँचों भाइयोंने आकर महाराज धृतराष्ट्र, विदुर और कुन्तीके चरणोंमें गिरकर प्रार्थना की, कि वे यहीं रह कर भगवद् भजन करें। भजनकी समस्त सुख सुविधायें यहीं कर दी जावेंगी। किन्तु धृतराष्ट्र

आदिने उनमेंसे किसीकी भी बातको न मानी। वे सब बन जानेके लिये अत्यन्त चञ्चलता और आग्रह प्रकट करने लगे। जब पाण्डवोंने देखा, कि वे इस समय किसीकी कुछ भी न सुनेंगे, तो हारकर प्रणाम पूर्वक सबसे आशीर्वाद मांगा। सबने उन्हें सत्य हृदय और मनसे आशीर्वाद दिये। गान्धारीने पाँचों भाइयोंके मस्तकको सूंघकर शरीरपर प्रेमसे हाथ फेरा और अनन्त काल तक राजसुख भोगनेका आशीर्वाद दिया। आशीर्वाद देनेके बाद सब बनकी ओर चल दिये।

इस समय धृतराष्ट्र आदि सब वनगामियोंकी पोशाकें तपस्वियोंकीसी थीं। उन्होंने राजा महाराजाओंकी पोशाकोंको त्याग दिया। अतः उनके उस समयके वेशको देखकर दर्शकोंकी आखोंमें करुणाके आँसू भर आये। सबने रोते रोते कहा "हे अन्धराज! आप दीनोंके जैसा वेश धारणकर कहाँ जा रहे हैं? आपने यह वेश क्यों धारण किया है? आप नेत्रहीन और वृद्ध शरीर हैं। बनके दुर्गम—पथ और कष्टोंको आप न सह सकेंगे। महाराज युधिष्ठिर धर्मके साक्षात् अवतार हैं। फिर उन्होंने आपको बन जानेके लिये कैसे आज्ञा दे दी? आप बन न जाइये। हमारा अनुरोध मान कर लौट आइये। हम लोग आपके बिना नहीं जी सकते। धर्मराज युधिष्ठिर एक न्यायी और पुण्यवान् राजा हैं। वे आप लोगोंको पिता समझ कर ही सेवा करेंगे।"

धृतराष्ट्र इस क्रन्दन वाणीको सुनकर समस्त प्रजाको सम्बो-

धन करते हुए बोले—"हे प्रजागण ! हमारे कुलकी रीति है, कि जब पुत्र राज्यका भार वहन करनेमें समर्थ हो जाय, तो प्रत्येक राजा उसे राज-तिलक देकर, वाणप्रस्थ आश्रममें प्रवेशकर शेष जीवनको भगवान्के चरणोंमें अर्पित कर दे। तदनुसार पाण्डव लोग इस समय सर्वसमर्थ हैं। उन्होंने राज्य परिचालनका भार अपने ऊपर ले लिया है, अतः अब हम सब प्रकारसे निश्चिन्त हैं। इस समय भगवद् भजनमें अपना शेष जीवन बिताना ही हमारा परम कर्त्तव्य है। हमारे साथ महात्मा विदुर और सञ्जय हैं। उनके साथ रहनेसे बनमें हमें कोई भी असुविधा न होगी। आप लोग निश्चिन्त मनसे हमें बिदा दें।

इस प्रकार सबको यथोचित आश्वासन देकर धृतराष्ट्र बनकी ओर चल दिये। आगे आगे विदुरजी थे, उनके पीछे देवी गान्धारी और देवी कुन्ती थीं। अन्धराज गान्धारीका हाथ पकड़कर जा रहे थे। सबसे पीछे धर्मात्मा सञ्जय थे।

सुविस्तृत अरण्य प्रदेशके जिस स्थानपर वृक्षोंकी श्रेणी अपनी लम्बी लम्बी शाखायें फैलाकर पृथ्वीपर छाया कर रही थीं, जिस स्थान पर कलकण्ठ पक्षीगण मधुर स्वरसे संसारकी असारता और स्वर्ग—जीवनकी सारताके गीत गाकर निर्जन बनके वासियोंके कानोंमें अमृतकी वर्षा कर रहे थे, जिस स्थानपर गिरिगावाहिनी गंगा और विविध स्रोत कल कल स्वरसे मधुर ध्वनि करते हुए बह रहे थे, जो स्थान प्रकृतिका मनोहर सुरम्य उद्यान था, उसी स्थानमें जाकर अन्धराज धृतराष्ट्र, धर्मात्मा विदुर-

के साथ परम सुखसे निवास करने लगे। वनकी शोभा देखना और भगवान्‌का नामामृत रस पान करना ही उनका नित्य नैमित्तिक कर्म हो गया। धर्मात्मा विदुर इससे पहले भी जब पाण्डव लोग वनवास करते थे उस समय सुन्दर वनको देख गये थे। दुबारा आनेसे उनकी पुरानी स्मृति फिर जाग उठी। वे सारे स्थानोंको फिर बड़े चावके साथ देखने लगे। उन्होंने पहले जिस स्थानपर जिन दृश्योंको देखा था, इस समय उन स्थानों पर वे दृश्य नहीं देख पड़ते। जहाँ सरोवर थे, वहाँ अब जङ्गलके झुरमुठोंका आधिपत्य हैं। जहाँपर झुरमुठ थे, वहाँ सरोवर हो गये हैं। किसी स्थानपर फल फूलोंसे लदे समस्त वृक्ष श्याम शोभा धारणकर शीतल छाया दान कर रहे हैं। कहींपर वृक्ष श्रेणी शरीरमें लताओंको लिपटाकर उन्नत मस्तकसे खड़ी हैं। विदुरजी सोचने लगे, संसारकी गतिके परिवर्त्तनके साथ इन वनोंमें भी परिवर्त्तन हो गया है। वनोंमें घूमते घूमते उनके मनकी गति बदल गयी, वे एकदम भोजनका परित्यागकर सैकत भूमिपर वृक्षकी छायाके नीचे बैठकर परमात्माका ध्यान करने लगे। किन्तु वे दो दिनसे अधिक किसी एक स्थानपर नहीं रहते थे। किस दिन कहाँ रहेंगे, यह कोई नहीं जानता था। कुन्तीके साथ अन्धराज धृतराष्ट्र जब विदुरके दर्शनोंके लिये व्याकुल हो उठते, तब वे अकस्मात् दिखायी दे जाते थे। जानेके समय कह जाते।

"दुःख भोगसे पापोंका नाश होता है। सुखोंसे पुण्य क्षीण

होते हैं। हे भ्रान्त मनुष्यों! तुम लोग मिथ्या सुखोंकी इच्छा क्यों करते हो?"

इस प्रकार धर्म-प्राण विदुर बनवासमें परमानन्द सहित शेष जीवनके कर्त्तव्योंका पालन करने लगे। उनके जैसा कृष्ण-भक्त, उनके जैसा धार्मिक, उनके जैसा सत्यवादी और उनके जैसा त्यागी पुरुष इस कलिकालमें कहीं भी कोई नहीं देख पड़ता। शास्त्र कहते हैं, परमात्माकी रची इस सृष्टिमें सदा सब प्रकारकी शक्तियाँ रहती हैं। किन्तु द्वापरमें विदुरकी भांति महापुरुष इस संसारके वर्त्तमान कालमें कहीं कोई नहीं देख पड़ता। उनकी और उनकी पत्नीकी कृष्ण-भक्ति अतुलनीय थी। विदुरके समान श्रीकृष्ण-भक्त-प्राण पुरुष, और उनकी पत्नी श्रीमती पद्मावतीके समान पतिभक्त नारी इस संसारमें दुर्लभ हैं। भक्त-मालके रचयिता नाभाजी विदुर-पत्नी और विदुरकी भक्तिकी प्रशंसा करते हुए लिखते हैं—

"एक समयका जिक्र है, कि महाप्राणी पद्मावती अपने घरमें नंगी स्नान कर रही थीं, इसी समय भगवान कृष्णने विदुरजीके घरके द्वारपर उपस्थित हो, मधुर स्वरसे महात्मा विदुरको पुकारा। पद्मावती भगवानकी आवाज पहचान और यह जान कर, कि भगवान आये हैं। एकदम प्रेमसे उन्मत्त हो उठीं, उन्हें वस्त्र पहननेकी भी सुधि न रही और वे नङ्गीही भगवानको घरमें ले आनेके लिये चल दीं। जिस समय वे द्वारपर आयीं और कृष्णने उन्हें नग्न देखा, तो भगवानने तत्काल अपना पीताम्बर खोलकर

उनके शरीरपर डाल दिया। उस वस्त्रको ओढ़कर पद्माने भगवानका हाथ पकड़ लिया और उन्हें घरके भीतर ले गयीं। उस समय उनकी हालत मारे हर्ष और प्रसन्नताके बिकल थी। वे तत्काल शीतल जल लायीं और उससे भगवानके चरणोंको धोया। चन्दन और फूलोंसे उनकी पूजा की। अनन्तर भोगके लिये आप खाद्य-द्रव्य खोजने गयीं, किन्तु उस समय आनन्दसे अधीर होनेके कारण उनके हाथमें सिवा केलेकी फलीके और कुछ भी न आया। बहुत कुछ ढूंढ़ा और खोजा, पर कोई अच्छी चीज नहीं मिली। यह देख उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। सोचने लगीं,—हाय! विधाताने हमारी अवस्था कितनी दरिद्रता-पूर्ण बनायी है। आज सहसा ही तो भगवानने कृपा की और तिस पर भी भोगके लिये घरमें कोई अच्छी सामग्री नहीं। इतना सोचते ही वे बड़ी बिकल हुईं और ज्यों त्यों थोड़ीसी केलेकी फलियाँ लेकर ही भगवानके पास गयीं।

"पद्मा उस समय प्रसन्नतासे भरी हुई थीं। वे भगवानका बारम्बार चन्द्रमुख देखतीं और विह्वल हृदयसे अपने भाग्यकी प्रशंसा करती थीं। उन्होंने भगवानके समीप बैठकर उन्हें केलेकी फली खिलानी आरम्भ की। इस समय उनकी दशा विचित्र थी। कभी तो केलेका छिलका फेंककर भगवानके हाथमें फली देतीं और कभी फली फेंककर छिलका दे देतीं।"

* * * * * *

इसी समय महात्मा विदुरने सुना, कि युधिष्ठिर महाराजके

आदेशसे भगवान् श्रीकृष्ण आज हस्तिनापुर आये हैं और मेरे ही घरपर टिके हैं। वे उस वक्त संजयके पास बैठे थे। इस संवाद्को जानकर वे तत्काल घर गये। घरमें जाकर देखा, कि वहाँ सर्वत्र अलौकिक प्रकाश फैल रहा है। भगवान् कृष्ण बैठे हैं। मुख-पद्म खिला हुआ है। विदुर यह देख प्रेम सिन्धुमें गोते खाने लगे और मन ही मन कहने लगे,—"आज मेरा जन्म सफल हुआ। मेरे घरके भाग्य जगे। यह मानव-शरीर कृतकृत्य हुआ।" इतना सोचते ही उनकी एकटक दृष्टि भगवानकी छविको निहारने लगी। पर जब उनका ध्यान भगवानके हाथपर गया, तो देखा—भगवान्के हाथमें पद्माने केलेकी फलीके स्थानपर छिलका दे दिया है। यह देख वे तत्काल बोल उठे—"पगली! यह क्या कर रही है? फलोंको फेंककर भगवान्को छिलका खिला रही है।"

"यह सुनते ही पद्मावती आपेमें आयीं और उन्होंने तत्काल भगवानके हाथसे छिलका छीनकर फेंक दिया।" अस्तु,

यद्यपि व्यास विरचित महाभारतमें इन सब बातोंका उल्लेख नहीं है। तथापि यह ठीक है, कि महात्मा विदुर मर्य्यादासम्पन्न, संभ्रान्त और अनासक्त साधु पुरुष थे। केशवने कौरव सभामें यह बात स्पष्ट स्वरमें कही थी, कि भोजनकी शुद्धिसे चित्तकी शुद्धि होती है। मैं कौरवोंका अन्न न खाऊंगा। विदुरका भोजन शुद्ध है, चाहे जैसा होनेपर भी मैं उसे ही ग्रहण करूंगा।" इतना सुनकर भी कौरव नहीं माने और उन्हें अपने साथ बहुरत्न-समन्वित राजभवनमें ले गये। उनसे यहीं ठहरने और भोजन करनेके

लिये कहा। कृष्णने कहा--"आपने मेरी अभ्यर्थना की बस यही आप द्वारा की गयी मेरी यथेष्ट पूजा है। किन्तु निवास और भोजन तो मुझे विदुरका ही पसन्द है।"

यह सुनकर महात्मा विदुर भगवान्को अपने घर ले गये और वहाँपर भांति भांतिसे उनकी षोडशोपचार सहित पूजा की। इसके बाद महात्माजीने भगवान्को बहुगुण-युक्त अनेक प्रकारके विशुद्ध भोजन और पान कराये। मधुसूदन कृष्णने उनसे पहले ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट किया और जो बाकी रहा उसे अपने सहचरोंके साथ खा गये।

ऊपर भगवानकी अभ्यर्थनाके प्रसङ्गमें भक्तमालका नाभाजी महाभारतकार और भगवान् वेदव्यासका वर्णन-उल्लेख किया गया। अब बङ्गभाषाके प्रसिद्ध कवि काशीरामदासकी पद्य महाभारतका भी इस विषयमें कथन सुनिये। वे कहते हैं:—

"जिस समय भगवान् कृष्ण विदुरके यहाँ आये थे, उस समय आपने आते ही कौतुकके साथ विदुरसे कहा,—"विदुर! तुमने अबतक मेरी कोरी स्तुतियाँ ही की हैं। खाने पीनेकी एक बार भी जुबानपर न लाये। मुझे इस वक्त बड़ी भूख लगी है। घरमें जो कुछ मौजूद हो मुझे दो। स्तुति और भक्तिसे कभी किसीका पेट नहीं भरता। ये बातें तो पेटभर जानेपर अच्छी लगती हैं।"

इतना सुनते ही विदुर घरमें गये और थोड़ीसी चावलोंकी 'किनकी' ले आये। भगवान्ने उसे ही खाकर पानी पिया। यह देखकर विदुर बड़े लज्जित हुए। उनकी आँखें ऊपर उठनी दुश्वार

हो गयीं। जब भगवान् यह अद्भुत जलपान कर चुके तब महात्मा विदुरने कहा—“प्रभो ! आज्ञा दो, तो भिक्षाद्वारा अन्न-संग्रह कर लाऊं और उससे आप लोगोंकी सेवा करूं ?” यह सुन भगवान् हंसे और बोले “भाई सुनो ! भिक्षा करके अन्न जुटानेमें तो देर लगेगी ! न मालूम तुम कहाँ कहाँ जाओगे और कितनी देरमें आओ। इस लिये पासही मेंसे थोड़ासा अन्न मांग लाओ और उसे राँधकर हमें खिला दो। हम ज्यादा देरतक भूखे नहीं रह सकते। यह सुनकर विदुर पास हीके एक सद्गृहस्थसे थोड़ासा अन्न मांग लाये और उसे कुन्तीद्वारा रंधवा लिया। भगवान्ने उसे ही प्रेमसे खाया।”

असल बात जो हो, भक्तमालकार नाभाजी और कविवर काशीरामकी कही यह अनूठी कहानी भक्त-कुल-तिलक विदुरकी दीनताकी ही सूचना देती हैं। किन्तु वेदव्यासके मतानुसार राज-भ्राता विदुर दरिद्र नहीं थे। यदि दरिद्र होते, तो भगवान् और उनके सहचरोंको भाँति भांतिके द्रव्य उपहारमें नहीं दे सकते थे। तथापि महात्मा विदुर संचयी नहीं थे। वे कहते थे—“यदि मनुष्यके पास अच्छा स्वास्थ्य और पेटभर भोजन हो, तो उसके निकट राजका राजत्व तुच्छ है।...अस्तु,

महात्मा विदुर महा विनयी थे। तृणकी भांति नम्र और वृक्षकी भाँति सहिष्णु थे। एवं स्वयं अमानी होकर भी दूसरोंको मान देते थे।

अश्वमेध-यज्ञके बाद महाराज युधिष्ठिर माता कुन्ती देवी,

ज्येष्ठ तात धृतराष्ट्र एवं पितृव्य विदुरको देखनेके लिये बड़े व्याकुल हो उठे। उन्होंने चुपचाप अकेले ही बन गमन किया। वनमें जाकर उन्होंने जननी और ज्येष्ट तातको देखकर प्रणाम किया और कुशल प्रश्नकर सन्तोष प्राप्त किया। किन्तु वहाँ उन्हें धर्मात्मा विदुर न देख पड़े। अतएव वे उन्हें देखनेके लिये विकल हो उठे। धृतराष्ट्रसे पूछा,—"तात! महात्मा विदुर कहाँ हैं?"

धृतराष्ट्र बोले,—वत्स! वे प्रसन्न हैं और कठोर तपस्या द्वारा भगवान्‌का भजन कर रहे हैं। उन्होंने सारे सांसारिक भोगोंको त्याग, यहाँतक कि खाना और पहनना तक छोड़, केवल वायु भक्षण कर जीवन धारण करना आरम्भ कर दिया है। आजकल वे बहुत ही कमजोर हो रहे हैं। उनके शरीरमें सिवा नस और हड्डियोंके और कुछ भी बाकी न रहा है। वे प्रायः ही अदृश्य रहते हैं। किस समय कहाँ रहते हैं, यह कुछ पता नहीं। कभी कभी अकस्मात् आकर दर्शन दे जाते हैं और तत्काल चले जाते हैं। बीच बीचमें वे बनचारी ब्राह्मण तपस्वियोंके पास जाकर धर्मचर्चा करते हैं......।"

महाराज युधिष्ठिर और अन्धराज धृतराष्ट्रमें इस प्रकार वार्तालाप हो ही रही थी, कि इसी समय जटाधारी, शान्तमुख, कृश शरीर, दिगम्बर, मलिन एवं धूलिधूसरित विदुर, महाराज युधिष्ठिरको दृष्टिगोचर हुए। किन्तु विदुर, युधिष्ठिरको देखते ही जङ्गलमें घुस गये। यह देख, महाराजा युधिष्ठिरसे न रहा गया और वे भी उनके पीछे पीछे उसी बनमें चले गये। इस समय

महात्मा विदुर बहुत दूर निकल चुके थे, उनके पास जाकर भेंट करनेकी आशा महाराज युधिष्ठिरको न रही थी। अतः वे ऊँचे स्वरसे पुकारकर कहने लगे—"पितृव्य विदुर! मैं आपका प्यारा भ्रातृज युधिष्ठिर हूं, बचपनसे पालन और दया करते आते हुए भी इस समय ऐसे निर्दय क्यों हुए जाते हैं? थोड़ी देरके लिये खड़े होइये। मैं मनकी बातें कह सुनकर हृदयका शान्त करूँगा। आपके दर्शन कर पवित्र होऊँगा।"

इतना सुनते ही धर्मात्मा विदुर, उस निर्जन-कानन प्रदेशमें एक वृक्षकी जड़का सहारा लेकर बैठ गये। महाप्राज्ञ महाराज युधिष्ठिरने आकृतिमात्र अवशिष्ट अतिशय कृश विदुरके सामने जाकर कहा—"पितृव्य! मैं आपका दास युधिष्ठिर हूं।" अनन्तर उन्होंने महात्माजीकी यथेष्ट पूज़ा की।

विदुर एकाग्र हो अनिमेष नेत्रोंसे युधिष्ठिरके प्रति देखते रहे। वे योगका अवलम्बन कर युधिष्ठिरके शरीरमें अपना शरीर, उनके प्राणोंमें अपने प्राण और इन्द्रियोंमें अपनी समस्त इन्द्रियोंको प्रविष्ट कराते हुए प्रज्वलित अग्निकी भाँति कान्ति पाने लगे। राजा युधिष्ठिर महात्मा विदुरकी उस समयकी दिव्य दशाको देख आवाक् रह गये। उन्होंने उस समय अपनेको अति धन्य समझा। इसी समय देववाणी हुई,—"राजन्! विदुरने देह त्याग कर दिया है। आप उनकी देहको दग्ध न करें। उनके शरीरके इसी स्थानपर रहनेसे आपका मङ्गल और धर्म होगा। इसकी चिन्ता न करें, कि यदि हम उनके शरीरका संस्कार न करेंगे तो



वे योगका अवलम्बन कर युधिष्ठिरके शरीरमें अपना शरीर, उनके प्राणोंमें अपने प्राण और इन्द्रियोंमें अपनी समस्त इन्द्रियोंको प्रविष्ट करते हुए प्रज्वलित अग्निकी भांति कान्ति पाने लगे।

दुर्गा प्रेस कलकत्ता] [देखिये पृष्ठ संख्या ९६

उन्हें सान्तानिक लोक प्राप्त न होगा। उनका शरीरान्त गति-धर्म्म द्वारा हुआ है। यतियोंका शरीर धर्मशास्त्रके मतानुसार दग्ध नहीं होता।"

यह सुन महाराज युधिष्ठिर वहाँसे लौट आये। किन्तु अब उन्हें महात्मा विदुरके समस्त गुण रह-रहकर याद आने लगे। विदुरकी अन्तिम स्मृतिसे उनका हृदय शोक-पूर्ण हो गया। वे रोते-रोते हस्तिनापुर जा रहे थे, कि इसी समय रास्तेमें आपको पूज्यपाद महर्षि वेदव्यासके दर्शन हुए। युधिष्ठिरकी तत्कालीन मुखमुद्राको देख महर्षि समझ गये, कि इन्हें इस समय विदुरका वियोग कष्ट दे रहा है। युधिष्ठिरने वेदव्यासको प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर महर्षि कहने लगे—"हे धर्मनन्दन! आप अकारण शोक न करें। क्या आप भूल गये, कि विदुर और आपमें कोई भेद नहीं है। एक समय माण्डव्य ऋषिने किसी अपराधपर धर्म-राजको शाप दिया था, कि ये मर्त्यलोकमें जाकर जन्म लें। तदनुसार धर्मराजने विदुरके रूपमें आपके वंशमें जन्म लिया था। आपको आज्ञा हुई थी, कि धर्मराजके अंशसे संसारमें जन्म लें और जब धर्मराजका शाप पूर्ण हो जाये, तब आप उन्हें अपने शरीरमें प्रविष्ट कर लें। इस समय आप पूर्ण धर्मराज हैं, क्योंकि इस समय विदुरकी आत्माका निवास आपमें है। फिर आप किसके लिये शोक कर रहे हैं?"

यह सुनकर महाराजा युधिष्ठिरको परम सन्तोष हुआ। वे अब सानन्द घर चले गये।

महात्मा विदुर मृत्यु-विजयी थे। उनकी मौत उनकी इच्छा-के अनुकूल थी। वे धार्मिक, सिद्ध योगी और तत्व-परायण थे। उन्होंने मृत्यु को जीत कर केवल वायुका आहारकर वर्षों बनमें परमात्माका भजन किया। एवं जब युधिष्ठिरको देखा, तभी अपनी आत्मा और देहको उन्हें देकर स्वर्ग प्रस्थान किया। यही इच्छा मृत्यु है। ऐसी मौत सिवा विदुरके और किसीको भी प्राप्त नहीं हुई। जिस समय महात्मा विदुरने शरीर त्याग किया, उस समय स्वर्गके प्रायः समस्त देवता उनका स्वागत करने आये थे।—देवबाला और देव-कन्याओंने उनपर पुष्प वृष्टिकर गाया था:—

जय जय धर्मरूप भगवान् ॥

निज भक्तनके रक्षणकर्त्ता, सहजहि कृपा निधान।
अधरम नाशक धर्म उधारक, विस्तारक जशगान ॥

जय जय धर्मरूप भगवान् ॥

करुणमूर्त्ति न्यायी सुखदाता, जगके जीवन प्रान।
सुन्दर श्वेत मनोहर छवियुत, मम लोचनके भान ॥

जय जय धर्मरूप भगवान् ॥

अगनित गुनगन गिने न जायें, नहिं कोउ आप समान
पफुल्लित रूपराशि जग वल्लभ, विद्यायुत बहुज्ञान ॥

जय जय धर्मरूप भगवान्

परिशिष्ट.

महात्मा विदुरका जीवन सम्बन्धी वृत्तान्त समाप्त हो गया। उनके जीवनमें घटना वैचित्र्य या रहस्योंका समावेश नहीं है। वे धर्मात्मा थे, अतएव उनका जीवन भी सादा, सरल और अत्यन्त निश्छल है। यदि उनका जीवन किसी प्रकारकी विशेषता रखता है, तो वह उनकी एकमात्र नीतिमत्ता है। महाभारतकारने उनके चरित्रको चित्रित्र करनेमें तीन बातोंको ही प्रधानता दी है,—धर्म, ईश्वर-भक्ति और नीति-ज्ञान। महात्मा विदुरने अपने जीवनमें जितने भी काम किये, वे सब धर्म, भक्ति और नीतिमय थे। जो कुछ कहा, उसके प्रत्येक शब्दसे धर्म, भक्ति और नीतिकी ध्वनि निकलती है। हमने भी उनका जीवन-चरित्र लिखनेमें उक्त तीनों बातोंको ही प्रधान रूपसे प्रतिपादित किया हैं। तथापि अब भी उनके अनेक नीति-वाक्य हम प्रसङ्ग स्थलपर जान-बूझ-कर छोड़ आये हैं एवं उन्हें हम इन परिशिष्ट भागमें महात्मा विदुरका नोति शास्त्र, नामसे संग्रह कर लिखते हैं।

पाठक जानते होंगे, कि सांसारिक जीवनमें जय प्राप्त करने-के लिये धर्म और भक्तिकी अपेक्षा नीतिसे अधिक काम लेना पड़ता है। पूर्वकालमें जितने भी महापुरुष हो गये हैं, प्रायः सभीने अपने जीवनकी जटिल समस्याओंको एकमात्र नीति द्वारा ही सुलझाया है। अतएव नीतिका माहात्म्य अपूर्व हैं। एक

संस्कृतज्ञ विद्वान्ने कहा,—"नीति, विनय, सुपात्रता, धन और सुखका मूल है। जो व्यक्ति अपने समस्त सांसारिक कामोंको नीतिका आश्रय देकर सम्पादित करता है, उसे कभी विफलता नहीं प्राप्त होती। उसका प्रत्येक विषयमें छेड़ा हुआ निशाना बिना काम किये नहीं रहता।"

आजकल पुरातन शिक्षा प्रणालीके अभाव और नवीन शिक्षा प्रणालीके दोषसे हम पदपदपर ठोंकरें खाते हैं, तिसपर भी हमें सच्चे मार्गका पता नहीं लगता। अतएव आवश्यक है, कि हम काम करनेकी अपनी पुरातन नीति-सम्मत प्रणालीका आश्रय लें और अपने जीवनको स्वर्ण-जीवन बनायें। इसी उद्देश्यसे हमारा यह प्रयास है। आशा है, पाठक इससे यथोचित लाभ उठायेंगे।



महात्मा विदुर

-: का :-

नीति शास्त्र.

प्रथम परिच्छेद ।

नींद किसे नहीं आती ?

अभियुक्तं बलवता दुर्बलं हीन साधनम् ।
हृतस्वं कामिनं चोरं माविशन्ति प्रजागराः ॥

बलवान् शत्रुसे घिरे हुए, निःसहाय; सशङ्कित, लुटे हुए, कामी और चोरको रात्रिमें नींद नहीं आती।

सम्राट् कौन होते हैं ?

राज्ञा लक्षणसंपन्नस्त्रै लोकस्याधिपोभवेत् ।

जो व्यक्ति सदा प्रशंसनीय कार्य्य करता है, निन्दित कर्मोंसे बचता है, ईश्वरपर विश्वासी और श्रद्धावान् है, वह तीनों लोकोंका पूज्य या अधिपति होने योग्य है।

पण्डित कौन है ?

आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्म नित्यता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥

जो व्यक्ति अपने धर्मको-वास्तविक कर्त्तव्यको—शास्त्र, शक्ति और वैराग्यके वाधा देनेपर भी पालनही करते हैं, किसीकी कुछ भी परवाह नहीं करते, वे ही पण्डित हैं ।

निषेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत्पण्डित लक्षणम् ॥

जो उत्तम कर्मोंको करे, नीच कर्मोंको त्याग दे, ईश्वरके अस्तित्वपर विश्वास रखे और बड़े पुरुषोंपर श्रद्धा करे, वही पण्डित कहाता है ।

क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्य मानिता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥

जो क्रोध, आनन्द, अभिमान और लज्जासे धर्मका त्याग नहीं करता, तथा आदरणीय मनुष्यका आदर करता है, वही पण्डित कहाता है ।

यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।
कृतमेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ॥

जिसके उपाय और सम्मतिको कार्य्यकी समाप्ति होनेतक गैर आदमी नहीं जान सकते, वरन् कार्य्यके फलसे ही जिसके कार्योंका गैर आदमियोंको ज्ञान होता है, वही व्यक्ति पण्डित कहाता है ;

यस्य कृत्यं न विघ्नन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ॥

जिसके कर्त्तव्यमें जाड़ा, गर्मी, भय, काम, लोभ या निर्धनता

किसी प्रकारकी बाधा नहीं दे सकें अर्थात् जो अपने कर्त्तव्य पालनमें उक्त आपत्तियोंकी कुछ भी परवा नहीं करता, वही पण्डित कहाता है।

यस्य संसारिणी प्रज्ञा धर्मार्थावनुवर्तते।
कामादर्थं वृणीते यः स वै पण्डित उच्यते॥

जिसकी सांसारिक कार्योंका सम्पादन करानेवाली बुद्धि धर्म और अर्थसे युक्त हो एवं जो कामकी अपेक्षा धनको श्रेष्ठ समझता है, वही पण्डित कहाता है।

यथाशक्ति चिकीर्षन्ति यथाशक्ति च कुर्वते।
न किञ्चिदवमन्यन्ते नराः पण्डितबुद्धयः॥

पण्डित लोग प्रत्येक कार्यको करनेकी इच्छा अपनी शक्तिके अनुसार ही करते हैं और उस इच्छाके अनुसार ही प्रत्येक कार्यको करते हैं एवं कभी किसीका निरादर नहीं करते।

क्षिप्रं विजानाति चिरं शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात्
नासंपृष्टो ब्युपर्युङ्क्ते परार्थे तत्प्रज्ञानम् प्रथमं पण्डितस्य॥

पण्डितोंकी सबसे सरल यही पहचान है, कि प्रत्येक शब्द-के आशयको वे बड़ी जल्दी समझ लेते हैं। विषयको समाप्ति पर्यन्त सुनते रहते हैं। हरएक कामको खूब समझकर करते हैं। वे कभी कोई कार्य काम और क्रोधसे प्रेरित होकर नहीं करते। किसी बातका बिना पूछे जवाब नहीं देते।

नाप्राप्यमभिवांछन्ति नष्टं नेच्छन्ति शोचितुम्।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डितबुद्धयः॥

पण्डित लोग अप्राप्य वस्तुके पानेकी इच्छा नहीं करते, नष्ट हुई वस्तु या सिद्धिके लिये शोक नहीं करते, एवं जीवनमें चाहे जितनी आपत्तियोंसे सामना करना पड़े, उनसे कभी नहीं घबराते।

निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते॥

जो व्यक्ति किसी कामको करनेसे पहले, उसको समाप्त करनेका दृढ़ निश्चय कर लेता है एवं तदनुसार उसे लाख रुकावटें होनेपर भी समाप्त करके ही छोड़ता है, जो किसी भी समय अपने कर्त्तव्यसे विमुख नहीं होता, जो अपनी इन्द्रियोंको सदा वशमें रखता है, वही पण्डित कहाता है।

आर्यकर्माणि रज्यन्ते भूतिकर्माणि कुर्वते।
हितञ्च नाभ्यसूयन्ति पण्डिता भरतर्षभ॥

पण्डित लोग सदा अच्छे काम करते हैं, हमेशा धन पैदा करनेका उपाय करते रहते हैं एवं अपने हितको कभी नहीं छोड़ते।

न हृष्यत्यात्म सम्माने नावमानेन तप्यते।
गङ्गो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते॥

जो व्यक्ति आदरसे प्रसन्न नहीं होता और अपमानसे क्रुद्ध नहीं होता, जो गङ्गाकी भाँति गम्भीर होता है, वही पण्डित कहाता है।

श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ॥

जिस व्यक्तिकी बुद्धि विद्यानुसार हो, विद्या बुद्धिके अनुसार हो, और जो कभी किसी भी मर्य्यादाको नहीं तोड़ता, वही पण्डित कहाता है।

प्रवृत्तवाक्चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ॥

जो सत्य बातको कहनेमें न रुके, प्रत्येक बातका उत्तर तत्काल दे, तर्क-वितर्क करनेमें चतुर हो, जिसकी बुद्धि बेरोक-टोक विषय या प्रसङ्गके भावको समझ सकती हो, कथा-वार्ता कहनेमें पटु हो, वही पण्डितका पद प्राप्त करता है।

मूर्ख कौन है ?

अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थोश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः ॥

जो अपढ़, अभिमानी और दरिद्र होकर भी उच्च अभिलाषायें रखता हो, जो नीच कर्मोंसे धन पैदा करे, वही व्यक्ति मूर्ख कहा, जाता है।

स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ॥

जो अपने स्वार्थको छोड़कर अपनी आवश्यकताओंकी पर-वाह न कर, दूसरेके स्वार्थ या आवश्यकताओंको पूर्ण करनेके लिये दौड़ता है, जो समर्थ होकर भी मित्रों और हितैषियोंकी

सहायता नहीं करता एवं असमर्थ हो जानेपर सहायताके लिये दौड़ता है, वही मूर्ख कहाता है।

अकामान्कामयति यः कामयानान्परित्यजेत्।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमहुर्मूढचेतसम्॥

जो बेकारकी चीजोंकी चाह करे और कामकी चीजोंपर उपेक्षा करे, तथा जो निःशक्त होता हुआ भी बलवानोंसे शत्रुता करे, वही मूर्ख कहाता है।

अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम्॥

जो शत्रुको मित्र बनाये, मित्रको नुकसान पहूंचाये, एवं सदा बुरे काम करे, वही मूर्ख कहाता है।

संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ॥

जो व्यक्ति अपने करने लायक कर्मोंको नौकरोंसे कराये, अपनी शक्तिपर अविश्वास या सन्देह करे और जल्द निपटने लायक कामोंमें आवश्यकतासे अधिक देरी लगाये, वही मूर्ख कहाता है।

श्राद्धं पितृभ्यो न ददाति दैवतानि न चार्चति।
सुहृन्मित्रम् न लभते तमाहुर्मूढचेतसम्॥

जो माता-पितापर श्रद्धा न करे, देवताओंका अविश्वासकर पूजा न करे और मित्रसे प्रेम न करे, वही मूर्ख कहाता है।

अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहुभाषते।

अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ॥

जो विना बुलाये जाये, विना पूछे हुए जवाव दे, अथवा मतलवको विना समझे ही उत्तर दे बैठे, अविश्वसनीयपर विश्वास करे, वही मूर्ख कहाता हैं।

परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ॥

जो स्वयं दोषी होते हुए भी दूसरोंको दोष दे और अपने आप सदा दूषणीय कार्य करे, बिना जरूरत गुस्सा करे, वह महा मूर्ख कहाता है।

आत्मनो बलमज्ञाय धर्मार्थपरिवर्जितम्।
अलभ्यमिच्छन्नैष्कर्म्यान्मूढबुद्धिरिहोच्यते ॥

जो धर्म और अर्थके बिना, अपनेको बलवान् न समझकर अलभ्य वस्तुको बुरे कर्मों द्वारा प्राप्त करना चाहे, वह महा मूर्ख है।

अशिष्यं शास्ति यो राजन्यश्च शून्यमुपासते।
कदर्यं भजते यश्च तमाहुर्मूढचेतसम् ॥

जो पूजनीय व्यक्तिपर शासन करता है, जो पूजनीय नहीं है, उसकी पूजा करता है और कंजूसोंकी सेवा करके अपनेको धन्य समझता हैं, वह व्यक्ति मूर्ख हैं।

निर्दयी कौन है ?

एकः सपन्नमश्नाति वस्ते वासश्च शोभनम्।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ॥

जिसके आश्रित अनेक मनुष्य हैं, तिसपर भी वह अकेले अकेले स्वादिष्ट भोजनोंको करता है, अच्छे-अच्छे वस्त्र पहनता और राज महलोंके सुखोंको भोगता है, उसके बराबर संसारमें दूसरा निर्दयी नहीं है।

पापका भागी कौन है ?

एकः पापानि कुरुते फलं भुंक्ते महाजनः।
भोक्तारो विप्र मुच्यन्ते कर्त्ता "दोषेण लिप्यते।"

धनादि सञ्चय करनेमें एक मनुष्य ही पाप कर्म करता है, किन्तु उस धन या सुखोंको भोगनेवाले अनेक होते हैं, तिसपर तमाशा यह, कि जब पापका फल भोगनेका समय आता है, तो वे सुखके साथी अनेक व्यक्ति तत्काल अलग हो जाते हैं, अतएव सिद्ध हुआ, कि पापी एक मात्र वही है, जो अज्ञानवश पाप करता हैं।

बुद्धि-बलका प्रताप।

एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद्राष्ट्रं सराजकम्॥

शक्तिमान् धनुषधारीका छोड़ा हुआ वाण केवल एक आदमीको जाकर लगता है और बहुतसे मौके ऐसे भी होते हैं, जब वह बाण निशानेसे चूक जाता है, किन्तु बुद्धिमानोंकी बुद्धि बड़ेसे बड़े साम्राज्यका नाश कर दे सकती है।

एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु।
पञ्च जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भव॥

अतः प्रत्येक मनुष्यको अपनी बुद्धिके अनुसार पहले मित्र और शत्रुओंको पहचानना चाहिये, अनन्तर सम्मान द्वारा मित्र तथा बुद्धिबल द्वारा शत्रुओंको जीतकर, राजनीतिके समस्त अङ्गोंको जानकर, बुरे कामोंको परित्याग पूर्वक सुखी बननेकी चेष्टा करनी चाहिये।

मन्त्र विद्रोह।

एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः॥

जहर एकका नाश करता है; हथियारसे एक ही मनुष्य मरता है, परन्तु अपात्रोंमें गयी हुई सलाह सारे राष्ट्रका राजा समेत नाश कर देती है।

साधारण उपदेश।

एकः स्वादु न भुंजीत एकश्चार्थान्न चिन्तयेत्।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात्॥

प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि वह आश्रितोंकी उपेक्षाकर अकेला ही भोजन न करे, किसी विषयको अन्य लोगोंकी बिना सम्मति लिये अकेला ही निश्चय न करे, अकेले यात्रा न करे, और अकेला ही जागरण न करे।

एकमेवाद्वितीयं तद्यद्राजन्नावबुध्यसे।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव॥

ईश्वर एक है, उसका स्वरूप बिना सत्यकी सहायताके नहीं पहचाना जाता, सत्य स्वर्ग प्राप्तिका सोपान है, ईश्वर सत्यप्रिय

मनुष्यको समस्त दुःखोंसे इस प्रकार अनायास छुटकारा दिला देता है, जिस प्रकार समुद्रको पार करनेके लिये नाव।

क्षमाके गुण।

एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः॥

क्षमाशील व्यक्तियोंमें एक ही दोष होता है,—"दूसरा उनमें ढूंढ़नेसे भी नहीं मिलता और वह यह कि लोग उन्हें असमर्थ व्यक्ति समझ लेते हैं।

सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम्।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा॥

किन्तु इस दोषसे क्षमावान्‌का निरादर नहीं करना चाहिये। क्षमा असमर्थोंका गुण और समर्थोंका भूषण है।

क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते।
शान्तिखड्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः॥

क्षमा या शान्ति द्वारा सारा संसार वशमें किया जा सकता है। ऐसा कोई भी काम नहीं है, जो क्षमा द्वारा सिद्ध न किया जा सकता हो। जिसके हाथमें शान्ति-रूपी खड्ग है, उसका दुष्ट मनुष्य क्या कर सकता है?

अतृणे पतितो वह्नि स्वयमेवोपशाम्यति।
अक्षमावान्परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत्॥

जिस स्थानपर घास-फूस नहीं है, उस स्थानपर गिरी हुई अग्नि अपने आप शान्ति हो जाती है। किन्तु क्रोधी मनुष्य—

क्षमाहीन व्यक्ति अपने दोषसे आप ही दुःख भोगता है।

एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिन्सैका सुखावहा॥

एकमात्र धर्म ही कल्याण कारक है, एकमात्र क्षमा ही परम शान्ति है। एक मात्र विद्या ही परम सन्तोष है, और एक मात्र अहिन्सा ही परम सुख है।

साधारण उपदेश।

द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम्॥

युद्ध करनेमें असमर्थ राजा और परदेश न जानेवाले ब्राह्मण —इन दोनोंको पृथ्वी इस प्रकार अनायास निगल जाती है, जिस प्रकार बिलमें आये हुए पदार्थको सर्प निगल जाता है।

द्वे कर्माणी नरः कुर्वन्नस्मिंल्लोके विरोचते।
अब्रुवन्परुषं किंचिदसतोऽनर्चयंस्तथा॥

मनुष्य मीठी वाणी बोलना और सज्जनोंसे प्रेम करना—इन्हीं दो कर्मोंके करनेसे इस लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र परप्रत्ययकारिणौ।
स्त्रियः कातिकामिन्यो लोकः पूजितपूजकः॥

किसी दूसरेके चाहे हुए मनुष्यपर प्रेम करनेवाली स्त्री, और पूजा किये हुएकी पूजा करनेवाला मनुष्य—ये दोनों जने बिना विचारे काम करनेवाले मूर्ख हैं।

द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ।

यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ॥

शरीरका नाश करनेवाले ये दो कांटे बड़े ही तीक्ष्ण हैं, एक तो दरिद्रतासे कभी अप्राप्य वस्तुकी कामना करना और दूसरा असमर्थ होकर भी क्रोध करना।

द्वावेव न विराजेते विपरितेन कर्मणा।
गृहस्थश्च निरारम्भ कार्य्यवांश्चैव भिक्षुकः ॥

जो व्यक्ति गृहस्थ होकर भी कुछ कर्म न करे और जो संन्यासी होकर कर्मत्याग न करे, ये दोनों आत्म-विरोधी कर्म-कर्त्ता हैं एवं इनकी सांसारमें कभी प्रतिष्ठा नहीं होती।

द्वाविमौ पुरुषौ राजन्स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ॥

जो व्यक्ति सर्व समर्थ होकर भी अपने शत्रुओंपर क्षमा करता है और दरिद्र होकर भी दान करनेसे विमुख नहीं होता, ये दोनों व्यक्ति स्वर्गकी भी अपेक्षा उच्चासन प्राप्त करते हैं।

न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोधव्यो द्वावतिक्रमौ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे चाप्रतिपादनम् ॥

न्याय और धर्मसे पैदा किये धनका नाश कभी नहीं होता। और यदि होता है, तो केवल दो दोषोंसे एक अयोग्य पात्रमें दान करने और योग्य पात्रको न देनेसे।

द्वावंभसी निवेष्टव्यौ गले बध्वा दृढ़ां शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ॥

जो धनी होकर दान न करे और जो दरिद्र होकर तप

(परिश्रम) न करे, इन दोनों आदमियोंको अपने अपने गलेमें भारी पत्थर बांधकर पानीमें डूब मरना चाहिये।

द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः

जो संन्यासी योग द्वारा प्राण त्याग करता है और जो क्षत्रिय सम्मुख समरमें मारा जाता है,—ये दोनों ही सूर्य्य मण्डलको बेधकर स्वर्गमें स्थान पाते हैं।

त्रयोपाया मनुष्याणां श्रूयन्ते भरतर्षभ।
कनीयान्मध्यमः श्रेष्ठ इति वेदविदो विदुः॥

शास्त्र विशारद पण्डितोंने तीन प्रकारके न्याय बताये हैं। एक उत्तम (शान्ति) दूसरा मध्यम (दान) तीसरा हीन (दण्ड)।

त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः।
नियोजयेद्यथावत्तांस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु॥

इसी प्रकार संसारमें उत्तम, मध्यम और अधम—तीन प्रकारके मनुष्य होते हैं। इसलिये राजाको चाहिये, कि वह उक्त तीनों प्रकारके मनुष्योंको क्रमानुसार तीन श्रेणीके ही कामोंमें नियुक्त करे।

त्रय एवाधना राजन्भार्या दासस्तथा सुतः।
यत्ते समधिगच्छन्ति यस्य ते तस्य तद्धनम्॥

स्त्री, पुत्र और सेवक, ये तीनों प्राणी निर्धन या असमर्थ कहाते हैं, ये जो भी वस्तु प्राप्त करें, उसे अपने स्वामीको अर्पित कर दें। क्योंकि उसकी रक्षा एकमात्र स्वामी ही कर सकता है।

हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम्।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः॥

दूसरेका धन छीन लेना, पर-स्त्रियोंपर अत्याचार करना और अपने मित्रोंका परित्याग कर देना, इन्हीं तीन दोषोंसे मनुष्य नष्ट होता है।

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

काम, क्रोध और लोभ—ये तीनों नरकके द्वारा हैं, और इन्हीं तीनोंसे मनुष्यका सर्वनाश होता है, अतएव ये तीनों प्रत्येक मनुष्यके लिये त्याज्य हैं।

वरप्रदानं राज्यँ च पुत्रजन्म च भारत।
शत्रोश्च मोक्षणं कृच्छ्रात्त्रीणि चैकं च तत्समम्॥

वर पाना या कार्य्यो सिद्धि, राज्य पाना या किसीपर विजय पाना, पुत्र-प्राप्ति और किसीको दुःखसे बचाना ये चारों समान आनन्द देनेवाले हैं।

भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम्।
त्रीनेतांश्छरणं प्राप्तान्विषमेऽपि न संत्यजेत्॥

मनुष्यको चाहिये, कि कठिनसे कठिन समयमें भी अपने भक्त, सेवक और आश्रयीका त्याग न करे।

चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात्।
अल्पप्रज्ञैः सह मंत्रं न कुर्यान्न दीर्घसूत्रै रभसैश्चारणैश्च॥

राजा और पण्डित इन दोनोंको चाहिये; कि ये मूर्ख,

आलसी शीघ्र प्रसन्न होनेवाले या विचार शून्य और रणभीरुओंसे कभी मित्रता न करें।

चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गृहस्थधर्मे।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सखा दरिद्रो भगिनीचानपत्या॥

भगवान् करे, प्रत्येक व्यक्तिके घरमें कुल-धर्मका उपदेश करने वाले वृद्ध, बालकोंको आचार-विचारवान् बनानेवाले कुलीन, हितकी बात कहनेवाले मित्र और गृहस्थके शुभ-कार्योंको कराने वाली बहिन—ये चारों रहें। क्योंकि इन चारोंके रहनेसे धर्मे लाभ होता है।

चत्वार्याह महाराज साद्यस्कानि बृहस्पतिः।
पृच्छते त्रिदशेंद्राय तानीमानि निबोध मे॥
देवतानां च संकल्पमनुभावं च धीमताम्।
विनयं कृतविद्यानाँ विनाशं पापकर्मणाम्॥

आचार्य्य बृहस्पतिने राजा इन्द्रको चार कर्म करनेका उपदेश दिया था, जिनमें एक देवता या सत्पुरुषोंके दर्शन करना, बुद्धिमानोंके प्रभावपर विश्वास करना, पण्डितोंके साथ विनयसे काम लेना और पापियोंका नाश करना।

चत्वारि कर्माण्यभयंकराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथाकृतानि।
मनाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः॥

अग्निहोत्र, मौन रहना, पढ़ना और यज्ञ करना—ये चारों कर्म सुखदायक हैं। किन्तु इन्हें भले प्रकार न करनेसे कष्ट भी मिलता है।

पंचाग्नयो मनुष्येण परिचर्याः प्रयत्नतः ।
पिता माताग्निरात्मा च गुरुश्च भरतर्षभ ॥

प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि वह माता, पिता, अग्नि, आत्मा और गुरु इन शास्त्र-कथित पञ्चाग्नियोंकी सेवा करे।

पंचैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान्पितृन्मनुष्यांश्च भिक्षूनतिथिपंचमान् ॥

देवता, पितर, मनुष्य, भिखारी और अतिथि, इन पांचोंकी पूजा करनेसे मनुष्य इस लोकमें यश प्राप्त करता है।

पंच त्वानिगमिष्यन्ति यत्र यत्र गमिष्यसि ।
मित्राण्यमित्रा मध्यस्था उपजीव्योपजीविनः ॥

मित्र, शत्रु, मध्यस्थ, गुरु और सेवक सदा सबके साथ रहते हैं।

पंचेंद्रियस्य मर्त्यस्य छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ॥

मनुष्यकी पाँचों इन्द्रियोंमें यदि एकमें भी छेद हो जाये, अर्थात् वे कुपथपर ले जाने लगें, तो मनुष्यकी सारी बुद्धि इस प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार एक छेद हो जानेपर मशकका पानी।

षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध मालस्यंदीर्घसूत्रता ॥

प्रतिष्ठा प्राप्तिकी इच्छा रखनेवाले प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि वह अधिक सोना, उँघना, डर, क्रोध, आलस्य और ढीलेपन इन छै दोषोंको छोड़ दे।

षड्मान्पुरुषो जह्याद्भिन्नां नावमिवार्णवे।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम्॥
अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम्।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम्॥

अप्रवक्ता गुरु, मूर्ख पुरोहित, अरक्षकराजा, कटु-भाषिणी स्त्री, ग्रामकी इच्छा करनेवाले ग्वाले और वन जानेकी इच्छा करने वाले नाईको लोग इस प्रकार छोड़ दें, जिस प्रकार नदीको पार करने वाले टूटी नावका त्याग कर देते हैं।

षडेव तु गुणाः पुंसा न हातव्याः कदाचन।
सत्यं दानमनालस्यमनसूया क्षमा धृतिः॥

सत्य, दान, निरालस्य, किसीकी निन्दा न करनेका भाव, क्षमा और धैर्य्य इन छहों गुणोंका त्याग मनुष्य किसी समय भी न करे।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

धनकी आय, सदा नीरोग रहना, सदा प्रिय बोलनेवाली स्त्री, आज्ञानुवर्त्ती पुत्र और धन देनेवाली विद्या, संसारमें ये छही सुख हैं।

षण्णामात्मनि नित्यानामैश्वर्यं योऽधिगच्छति।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेंद्रियः॥

जो इन छहों सुखोंका सदा उपभोग करता है, वह जितेन्द्रिय स्वप्नमें-भी दुःखोंका दर्शन नहीं करता। उसे स्वप्नमें भी पाप स्पर्श नहीं कर पाते।

षडिमे षट्सु जीवन्ति सप्तमो नोपलभ्यते।
चौराः प्रमत्ते जीवन्ति व्याधितेषु चिकित्सकाः॥
प्रमदाः कामयानेषु यजमानेषु याजकाः।
राजा विवदमानेषु नित्यं मूर्खेषु पंडिताः।॥

चोर असावधान रहनेवालोंसे, वैद्य रोगियोंसे, स्त्री कामियोंसे, पुरोहित यजमानोंसे, राजा झगड़ालुओंसे और पण्डित मूर्खों से जीविका पाते हैं।

षडिमानि विनश्यन्ति मुहूर्तमनवेक्षणात्।
गावः सेवा कृषिर्भार्या विद्या वृषलसंगतिः॥

गाय, सेवाकार्य्य, खेती, स्त्री, विद्या और मूर्खों की सङ्गति ये छहों थोड़ी देरकी असावधानतासे ही नष्ट हो जाते हैं।

षडेते ह्यवमन्यन्ते नित्यं पूर्वोपकारिणम्।
आचार्यं शिक्षिताः शिष्याः कृतदाराश्च मातरम्॥
नारीं विगतकामास्तु कृतार्थाश्च प्रयोजकम्।
नावं निस्तीर्णकांतारा आतुराश्च चिकित्सकम्॥

शिक्षित शिष्य गुरुको, विवाहित पुत्र माताको, कामवासना तृप्त व्यक्ति स्त्रीको, कार्य्य सिद्ध हो जानेपर लोग प्रयोजनको, नदी पारकर लेनेपर नावको और रोग आराम हो जानेपर हकीमको, ये छहों आदमी अपने उपकारियोंके काम हो जानेपर उपकार नहीं मानते।

आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह संप्रयोगः।
स्वप्रत्यया वृत्तिरभीतवासः षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्॥

रोग रहित रहना, किसीका कर्जदार न होना, परदेशमें जाना, पण्डितोंका सत्संग करना, अपने हाथोंसे जीविका निर्वाह करना और निर्भय होकर रहना, ये छे बातें इस संसारमें महासुख हैं।

ईर्ष्यी घृणी न संतुष्टः क्रोधनो नित्य शङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः॥

दूसरेके सुखको देखकर डाह करनेवाला, घृणित उपायोंसे काम करनेवाला, असन्तोषी, क्रोधी, सदा शङ्का करनेवाला और पराये भाग्यपर जीवन-निर्वाह करनेवाला ये छे व्यक्ति सदा दुःखी रहते हैं।

स्त्रियोऽक्षा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पञ्चमम्।
महच्च दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च॥
सप्त दोषाः सदा राज्ञा हातव्या व्यसनोदयाः।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतमूला अपीश्वराः॥

परस्त्री, जुआ, शिकार, शराब पीना, कटु भाषण, कठोर दण्ड देना, और प्रयोजनका नाश करना, ये सात दोष राजाको त्याग देने चाहिये। इन बातोंका परिणाम बड़ा भयानक होता है, बाज-बाज वक्त अपने राज्य समेत राजा भी इन्हींके द्वारा नष्ट हो जाता है।

ब्राह्मणस्वानि चादत्ते ब्राह्मणांश्च जिघांसति।
रमते निन्दया चैषां प्रशंसां नाभिनन्दति॥
अष्टौ पूर्वनिमित्तानि नरस्य विनशिष्यतः।

नैनां स्मरति कृत्येषु याचितश्चाभ्यसूयति।
एतान्दोषान्नरः प्राज्ञो बुध्ये बुद्ध्वा विसर्जयेत्।

ब्राह्मणोंसे वैर करना, ब्राह्मणोंका धन लेना, ब्राह्मणोंकी निन्दा करना, और उनकी प्रशंसा न करना, उन्हें यज्ञादिमें न बुलाना, और भिक्षा-भाजन ब्राह्मणोंका निरादर करना, नष्ट होनेवाले मनुष्यके कुछ दिनों पहले यही काम होते हैं। बुद्धिमानोंको उचित है, कि वे इन दुष्कर्मोंका त्याग कर दें।

अष्टौ गुणा पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमःश्रुतं च।
पराक्रमश्चा बहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च॥
अष्टाविमानि हर्षस्य नवनीतानि भारत॥
वर्तमानानि दृश्यन्ते तान्येव स्वसुखान्यपि।

बुद्धि, उत्तम कुलमें जन्म, इन्द्रियोंको जीतना, पराक्रम, विद्या मितभाषण, शक्तिके अनुसार दान करना और उपकारकका कृतज्ञ बनना ये आठ प्रकारके गुण हैं। और ये आठ गुण ही मनुष्यको सम्मान तथा प्रतिष्ठा दिलाते हैं।

नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पञ्चसाक्षिकम्।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान्यो वेद स परः कविः॥

हमारा यह शरीर एक मकानके मानिन्द है, इसमें नाक, कान आँख, मुख, लिङ्ग, गुदा, मन, बुद्धि तथा अहङ्कार ये नौ दर्वाजे हैं, उसकी छतको उठानेवाले अविद्या, काम और कर्म नामके तीन खम्भे हैं। रूप, रस, गन्ध स्पर्श और शब्द ये पांच उस मकानमें कमरे हैं। उस मकानका निवासी आत्मा है। जो विद्वान् इस रहस्यको जानता है, वही पण्डित कहाता है।

दश धर्मं न जानन्ति श्रृणु वक्ष्यामितेनृप ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ॥
त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्माद्देतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ॥

मद्य आदि नशेकी चीजोंका सेवन करनेवाला, विषयोंमें लिप्त रहनेवाला, हतोत्साही, पागल, थका हुआ, क्रोधी, हर एक काममें शीघ्रता करनेवाला, लोभी, डरपोक, और कामी, ये दश मनुष्य धर्मका स्वरूप नहीं जानते, अतएव इनसे कोई भी व्यक्ति मित्रता न करे ।

आदर्श राजाके लक्षण ।

यः काममन्यू प्रजहाति राजा पात्रे प्रतिष्ठापयते धनं च ।
विशेष विच्छ्रुतवान् क्षिप्रकारी तं सर्वलोकः कुरुते प्रमाणम् ॥

जो राजा काम-क्रोधका त्यागकर योग्य पुरुषोंका आदर करता है, सब विषयोंके विशेष मतलबको समझता है। जो अपने कर्त्तव्योंका यथोचित पालन करता है, उसको सारा संसार आदर्श राजा कहता है ।

जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान्विज्ञातदोषेषुदधाति दण्डम् ।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तां तादृशं श्रीर्जुषते समग्रा ॥

जो विश्वसनीय और अविश्वसनीय मनुष्योंकी पहचान रखता है, यथार्थ दोषीको उचित दण्ड देता है, अपराधके अनुसार दण्ड-विधान करता है, और क्षमाके गुणोंको जानता है,

सुदुर्बलं नावजानाति कञ्चिद्युक्तो रिपुं सेवते बुद्धि पूर्वम् ।
न विग्रहं रोचते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ॥

जो राजा किसीको भी दुर्बल नहीं समझता, जो बुद्धि और युक्तिके साथ शत्रुको भी अपना लेता है. जो बलवान्से बैर नहीं करता और समयपर अपनी बलवत्ताका परिचय देता है, वही धीर और वीर कहाता है ।

प्राप्यापदं न व्यथते कदाचिदुद्योग मन्विच्छति चाप्रमत्तः ।
दुःखं च काले सहते महात्मा धुरंधरस्तस्य जिताः सपत्नाः ॥

जो आपत्ति-पूर्ण स्थानमें जाकर भी अभय रहता है, जो सावधानीके साथ उद्योग करता है, जो समयपर दुःखोंको सहनेके लिये तत्पर रहता है, वही कठिन कार्य्योंको सिद्ध करनेमें समर्थ और शत्रुओंपर विजय प्राप्त कर सकता है ।

अनर्थकं विप्रवासं गृहेभ्यः पापैः संधिं परदाराभिमर्शम् ।
दंभं स्तैन्यं पैशुनं मद्यपानं न सेवते यश्च सुखी सदैव ॥

जो व्यर्थके कामोंमें अपने जीवनके अमूल्य समयको बरबाद नहीं करता, मित्रों और आश्रितोंका बहिष्कार नहीं करता, जो पापियोंसे मित्रता और पर-स्त्रियोंपर अधर्म नहीं करता, एवं छल चोरी, निन्दा और नशीली चीज़ोंका सेवन नहीं करता, वह सदा सुखी रहता है ।

साधारण उपदेश ।

न संरंभेणारभते त्रिवर्गमाकारितः शंसति तत्वमेव ।
न मित्रार्थे रोचयते विवादं नापूजितः कुप्यति चाप्यमूढः ॥

जो क्रोधके वशीभूत हो धर्म, अर्थ और काम सम्बन्धी कार्य्यों-का अनुष्ठान नहीं करता। प्रत्येक बातके भावको समझता है, जो मित्रोंके साथ विवाद नहीं करता और अपमान पाकर भी दुःख नहीं करता, वही पण्डित कहाता है।

न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रातिभाव्यं करोति।
नात्याह किंचित्क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग्लभते प्रशंसाम्॥

जो किसीकी उन्नतिको देखकर डाह नहीं करता, जो दुर्बल होकर किसीसे विरोध नहीं करता, जो मितभाषी है तथा विवादके समय क्षमासे काम लेता है, संसारमें एकमात्र उसकी प्रतिष्ठा होती है।

यो नोद्धतं कुरुते जातु वेषं न पौरुषेणापि विकत्थतेऽन्यान्।
न मूर्छितः कटुकान्याह किंचित्प्रियं सदा तं कुरुते जनोऽपि॥

जो मनुष्य कभी दुष्टोंके स्वरूपको धारण नहीं करता, अपने बल-भरोसेपर शत्रुओंसे युद्ध नहीं ठानता, जरासे क्रोधमें कटु बचन नहीं बोलता, वह सदा सबका प्यारा बना रहता है।

न वैरमुद्दीपयति प्रशांतं न दर्पमारोहति नास्तमेति।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः।

जो मनुष्य कभी शान्त मनुष्योंसे बैर नहीं बढ़ाता, जो स्वप्नमें भी अभिमान नहीं करता, और आत्म-गौरवको तिलाञ्जलि दे अपकर्म नहीं करता, उसे श्रेष्ठ लोग भी श्रेष्ठ कहते हैं।

न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं नान्यस्य दुःखे भवति प्रहृष्टः।
दत्वा न पश्चात्कुरुते न तापं स कथ्यते सत्पुरुषार्य शीलः

जो अपने सुखके समय फूलकर प्रसन्न नहीं होता, जो दूसरेके दुःखको देख अपनेको दुःखी समझता है और जो किसीको कुछ देकर पश्चात्ताप नहीं करता, वह पुरुष सर्वत्र श्रेष्ठ समझा जाता है।

देशाचारान्समयाञ्जाति धर्मान्बुभूषते यः स परावरज्ञः।
स यत्र तत्राभिगतः सदैव महाजनस्याधिपत्यं करोति॥

जो व्यक्ति स्थान-धर्म, युग-धर्म और जाति-धर्म—इन तीनों धर्मोंकी अभिज्ञता रखता है, उसे पण्डित लोग सम्मान देते एवं महनीय लोग अपना राजा बनाते हैं।

दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम्।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत्स प्रधानः॥

पण्डितोंको नीचे लिखे अपकर्म त्याग देने चाहिये, जैसे घमण्ड, भ्रम, परनिन्दा, पाप-कर्म्म, राजद्वेष, वैर, मतवाले, और पागलोंसे विवाद।

दानं होमं दैवतं मङ्गलानि प्रायश्चित्तान्विविधाँल्लोकवादान्।
एतानि यः कुरुते नैत्यकानि तस्योत्थानं देवताराधयन्ति॥

जो मनुष्य, दान, होम, पण्डितोंकी पूजा; मांगलिक कार्य्य, प्रायश्चित्त और विविध सांसारिक व्यवहार करता है, उसकी देवता भी प्रशंसा करते हैं।

समैर्विवाहं कुरुते न हीनैः समैः सख्यं व्यवहारं कथां च।
गुणैर्विशिष्टांश्च पुरो दधाति विपश्चितस्तस्य नयः सुनीता॥

जो व्यक्ति अपने ही समान व्यक्तियोंसे सम्बन्ध, प्रीति, व्यव-

हार और वार्त्तालाप करता है, वही बुद्धिमान कहाता है एवं जो अपनेसे अधिक विद्वान् और पण्डितको सब कामोंमें अगाड़ी रखता है, उसकी नीति और व्यवहारोंकी सर्वत्र प्रशंसा होती है।

मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवंतं प्रजहत्यनर्थाः॥

जो व्यक्ति अपने आश्रितोंको बांटकर बादको अपने हिस्सेका परिमित भोजन करता है। दिनभर अधिक परिश्रम करनेपर भी बहुत थोड़ा सोता है, और याचना करनेपर शत्रुओंको भी हर तरहसे मदद देता है, उसका सदा—सर्वदा कल्याण होता है।

चिकीर्षितं विप्रकृतं च यस्य नान्ये जनाः कर्म जानन्ति किंचित्।
मंत्रे गुप्ते सम्यगनुष्ठिते च नाल्पोऽप्यस्य च्यवते कश्चिदर्थः॥

जिस व्यक्तिके इच्छित विचार, क्रोध और सलाहोंको बाहरी आदमी किसी प्रकार नहीं जान सकते, वह कभी किसी अनर्थ या धोखेमें नहीं फँसता।

यः सर्वभूतप्रशमे निविष्टः सत्यो मृदुर्मानकृच्छुद्धभावः।
अतीव स ज्ञायते ज्ञातिमध्ये महामणिर्जात्य इव प्रसन्नः॥

जो सब प्राणियोंका सदा सर्वदा कल्याण चाहता है, सत्यको प्यार करता और सबसे कोमल व्यवहार करता है एवं जिसके सारे भाव शुद्ध हैं, वह अपनी जातिवालोंमें बैठकर ऐसा शोभा पाता है, जैसा रत्नोंमें महामणि।

य आत्मनापत्रपते भृशं नरः स सर्वलोकस्य गुरुर्भवत्युत।
अनंततेजाः सुमनाः समाहितः स तेजसा सूर्य इवावभासते॥

जो व्यक्ति अपने अज्ञानसे किये कर्मोंको देख स्वयमेव लज्जित होता है, वही सब लोगमें गुरुता प्राप्त करता है, वही मनुष्य महातेजस्वी और सावधान होकर सूर्य्यके समान प्रकाशित होता है।

द्वितीय परिच्छेद।

मानवधर्म।

शुभं वा यदि वा पापं द्वेषं वा यदि वा प्रियम्।
अपृष्टस्तस्य तदुब्रूयाद्यस्त नेच्छेत्पराभवम्॥

प्रत्येक मनुष्यका धर्म है, कि वह जिसका कल्याण चाहे, उससे शुभ और अशुभ, प्रिय और अप्रिय सब प्रकारके बचन कहे।

मिथ्योपेतानि कर्म्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपायप्रयुक्तानि मास्म तेषु मनः कृथाः॥

जो काम कपटतासे सिद्ध होते हों और जिन कामोंको करनेके लिये असद् उपायोंका अवलम्बन करना पड़े, मनुष्योंको चाहिये, कि वह उन्हें करनेका कभी प्रयत्न न करे।

तथैव योगविहितं यत्तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेन्मनः॥

तथा जो कर्म अनेक उपाय करनेपर भी सिद्ध न होते हों, अनेक यत्न करनेपर भी जिनके होनेकी सम्भावना न हो, उन्हें करनेके लिये भी कभी मनोयोग न करना चाहिये।

अनुबंधानपेक्षेत सानुबंधेषु कर्मसु।
संप्रधार्य च कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्॥
अनुबंधं च संप्रेक्ष्य विपाकं चैव कर्मणाम्।
उत्थानमात्मनश्चैव धीरः कुर्वीत वा न वा॥

जिन कामोंको सिद्ध करनेसे प्रयोजन सिद्ध होते हों, उनके लिये प्रत्येक बुद्धिमान् पहले विचारपूर्वक निश्चय करे और जब काममें हाथ डाल दे, तब इतनी शीघ्रता न करे, जो उसका फल नष्ट हो जाये, प्रत्येक व्यक्तिको प्रत्येक काम आवश्यकता, अपनी शक्ति और परिणाम या फलका विचार करके करना चाहिये।

यः प्रमाणं न जानाति स्थाने वृद्धौ तथा क्षये।
कोशे जनपदे दण्डे न स राज्येऽवतिष्ठते॥

जो मूर्ख वृद्धि और नाशके प्रमाणको नहीं जानता, जो धन, देशकी अवस्था और दण्ड-विधियोंकी भले प्रकारसे जानकारी नहीं रखता, वह कभी किसी देशका शासक नहीं हो सकता।

यस्त्वेतानि प्रमाणानि यथोक्तान्यनुपश्यति।
युक्तो धर्मार्थयोर्ज्ञाने स राज्यमधिगच्छति॥

शासक होने योग्य वही व्यक्ति है, जो उक्त बातोंको भले प्रकारसे जाननेके अलावा धर्म-शास्त्र और अर्थ-शास्त्रका सुविज्ञ पण्डित हो।

न राज्यं प्राप्तमित्येव वर्तितव्यमसांप्रतम् ।
श्रियं ह्यविनयो हंति जरा रूपमिवोत्तमम् ॥

किसी भी व्यक्तिको शासनाधिकार पाकर अनीतिका अवलम्बन न करना चाहिये। क्योंकि अनीति बड़ेसे बड़े राज्यका इस प्रकार अनायास नाश कर देती है, जिस प्रकार सुन्दर रूपको बुढ़ापा।

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो वडिशमायसम् ।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबंधमवेक्षते ॥

किसी भी कामको केवल उसका बाहरी सुन्दर रूप देखकर ही न कर डालना चाहिये, मछली कांटेमें लिपटे अन्नको खानेके लिये दौड़कर प्राण दे देती है, इसी प्रकार जो व्यक्ति बिना सोचे समझे कार्य कर डालता है, उसे विफलता तो मिलती ही है, साथ ही प्राणोंके भी लाले पड़ जाते हैं।

यच्छक्यं ग्रसितुं ग्रस्यं ग्रस्तं परिणमेच्च यत् ।
हितं च परिणामे यत्तदाद्यं भूतिमिच्छता ॥

अतएव प्रत्येक मनुष्यको सोच विचारकर वह काम करना चाहिये, जिसके करनेमें एकबार कठिनाई होनेपर भी परिणाम लाभप्रद हो। खाना वह अच्छा होता है, जो फल-रूपमें शरीरका वृद्धि साधन करे, अन्यथा विष मिले लड्डू किस कामके। किन्तु इतना होनेपर भी मूर्ख लोग जिह्वा-लालसावश विष लिप्त भोजन की ही ओर दौड़ते हैं। बुद्धिमानको चाहिये, कि वे ऐसा खाद्य खायें, जो अन्तमें सुखदायक हो।

अविचारका फल ।

वनस्पतेरपक्कानि फलानि प्रचनोति यः ।

स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति !

जो मूर्ख व्यक्ति लोभसे प्रेरित होकर वृक्षसे कच्चे फलको तोड़ लेता है, उसे फल द्वारा रस भी नहीं मिलता और बीजका भी नाश हो जाता है।

सुविचारका फल ।

यस्तु पक्कमुपादत्त काले परिणतं फलम् ।

फलाद्रसं सलभते बीजाच्च व फलं पुनः ॥

जो विचारशील व्यक्ति समयपर वृक्षसे पके हुए फलको तोड़ता है, वह उससे रस भी प्राप्त करता है और वृक्ष उत्पन्न करनेवाले बीजको भी पाता है।

धनका सदुपयोग ।

यथा मधु समादत्ते रक्षन् पुष्पाणि षट्पदः

तद्वदर्थान्मनुष्येभ्य आदद्यादविहिंसया ॥

भौंरा पहले परिश्रम पूर्वक सब प्रकारके सुगन्धिमय पुष्पोंसे मधु एकत्रित करता है और जबतक उतना मधु एकत्रित नहीं हो जाता, कि जितना उसे शीतऋतुमें पर्य्याप्त हो, वह पाये हुएकी रक्षा करता है और आगेको पानेके लिये चेष्टा करता रहता है। उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्यको अपने जीवनकी प्रथम अवस्थामें, धर्म-बुद्धि अहिंसात्मक उपायों द्वारा धन पैदा करना चाहिये। अनन्तर उसे शरीर-रक्षा, परिवार-रक्षा जाति-रक्षा और

देश—रक्षामें व्यय करना चाहिये।

पुष्पं पुष्पं विचिन्वींत मूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवारामे न यथांगारकारकः।

भौंरा बहुतसे बागोंमें जाकर अनेक लता और कुसुमोंमेंसे केवल मधु संग्रह करता है, उन्हें नष्ट करनेको चेष्ठा नहीं करता, तदनुसार प्रत्येक व्यक्तिको अपने धनागमके उपयोंका सदुपयोग करना चाहिये, नकि दुरुपयोग। यदि माली फूलोंका संग्रह करने जाकर लताओंका नाश कर देगा, तो सदाके लिये उसकी रोजी मारी जायगी।

कार्य्य-निर्वाचन।

किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः।
इति कर्माणि संचिंत्य कुर्याद्वा पुरुषो न वा॥

प्रत्येक मनुष्यको प्रत्येक कामको करने जाते वक्त इस बातकी भली भाँति विवेचना करलेनी चाहिये, कि अमुक काम मेरे करने योग्य है या नहीं? यदि है, तो उसे अन्ततक करे और नहीं है, तो उस ओरसे मुंह फेर ले।

अनारम्या भवंत्यर्थाः केचिन्नित्य' तथाऽगताः।
कृतः पुरुषकारो हि भवेद्येषु निरर्थकः॥

कार्य्यों की कोटियाँ होती हैं। बहुतसे काम अनायास सिद्ध हो जाते हैं और बहुतसे काम सिरतोड़ परिश्रम करनेपर भी सिद्ध नहीं होते। किन्तु उन कामोंका निर्वाचन मनुष्य अपनी शक्ति और बुद्धिकी ओर देखकर करे।

साधारण उपदेश।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
न तं भर्तारमिच्छन्ति षण्ढं पतिमिव स्त्रियः॥

जिस मनुष्यकी प्रसन्नतासे कोई विशेष लाभ नहीं और जिसके क्रोधसे विशेष हानि नहीं, ऐसे व्यक्तिकी सेवा इस तरह व्यर्थ है, जिस प्रकार नपुंसककी स्त्रीका शृङ्गार।"

कांश्चिदर्थान्नरः प्राज्ञो लघुमूलान्महाफलान्।
क्षिप्रमारभते कर्तुं न विघ्नयति तादृशान्॥

बुद्धिवान् मनुष्य ऐसे कार्य्योंका आरम्भ अतिशीघ्र करते हैं, जो कम परिश्रम-साध्य किन्तु अधिक फल वाले होते हैं,। क्योंकि ऐसे कामोंमें कर्त्ताको विघ्नोंका सामना नहीं करना पड़ता।

ऋजु पश्यति यः सर्वं चक्षुषानुपिबन्निव।
आसीनमपि तूष्णीकमनुरज्यति तं प्रजाः॥

जो राजा सचराचरको मधुर दृष्टिसे देखता है, लोगोंके साथ एकत्र बैठकर भी चुप रहता है; उसे सारे लोग प्रेम करते हैं।

राज-धर्म।

सुपुष्पितः स्यादफलः फलितः स्याद्दुरोरुहः।
अपक्वः पक्वसंकाशो न तु शीर्येत कर्हिचित्॥

राजा आदि धनवान् व्यक्तियोंको चाहिये, कि वह अपने सेवकोंको सुदृष्टिसे तो देखें, पर पुरस्कार आदि नित्य न दें। और

यदि समयपर पुरस्कार भी दें, तो उनके वशमें न हो रहें। यदि अपनेमें इतनी सामर्थ्य न हो कि प्रबलसे जय प्राप्त की जाये, तो इस असमर्थताका किसीको पता न लगने दें और सदा बाहरी शक्ति दिखाते रहें।

चक्षुषा मनसा वाचा कर्मणा च चतुर्विधम्।
प्रसादयति यो लोकं तं लोकोनुप्रसीदति।

जो राजा शुभ–दृष्टि, शुद्ध मन मधुर वाणी और अच्छे कामोंसे संसारको प्रसन्न करनेकी चेष्टा करता है, उसको सारा संसार प्रसन्न कर अपनेको कृतार्थ समझता है।

यस्मात्त्रस्यन्ति भूतानि मृगव्याधान्मृगा इव।
सागरान्तामपि महीं लब्ध्वा स परिहीयते॥

जिस राजकी प्रजा उससे ऐसी डरती है, जैसी हरिणी व्याधेसे, वह सारी पृथ्वीका राजा होकर भी शीघ्रही दरिद्र हो जाता है।

पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा।
वायुरभ्रमिवासाद्य भ्रंशयत्यनये स्थितः।

अधर्मी राजा अपने बाप-दादोंसे पाया हुआ राज्य इस प्रकार नष्टकर देता है, जिस प्रकार वायु जलहीन मेघोंको।

धर्ममाचरतो राज्ञः सद्भिश्चरितमादितः।
वसुधा वसुसंपूर्णा वर्धते भूतिवर्धिनी॥

किन्तु जो राजा सदा साधु आचरण करता है, धर्म और न्यायके साथ प्रजा पालन करता है, वही विभूति बढ़ानेवाली



रत्न-गर्भा वसुधा अधिपति होता है।

अथ सन्त्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः

प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ॥

और जो राजा ऐसा नहीं करता, सदा मनमानीसे अवाध्यता पूर्वक काम करता है, वह अपने राज्यका इस प्रकार नाश कर देता है, जिस प्रकार अग्निमें पड़कर चमड़ा नष्ट हो जाता है।

य एव यत्नः क्रियते परराष्ट्रविमर्दने।

स एव यत्नः कर्त्तव्यः स्वराष्ट्रपरिपालने ॥

अतएव प्रत्येक राजाको प्रजा-पालन और राज्य-रक्षाके लिये निरन्तर वैसी ही चेष्टायें करते रहना चाहिये, जैसी एक शत्रुको जीतनेके लिये की जाती हैं।

धर्मेण राज्यं विन्देत धर्मेण परिपालयेत्।

धर्ममूलां श्रियंप्राप्य न जहाति न हीयते ॥

एवं धर्मसे राज्यको प्राप्त करना चाहिये तथा धर्मसे ही उसका परिपालन करना चाहिये। क्योंकि धर्मसे प्राप्त की हुई राज्य-लक्ष्मी न तो कभी नष्ट होती है और न दूसरेके पास जाती है।

साधारण उपदेश।

अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः।

सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव कांचनम् ॥

समझदार आमियोंको चाहिये, कि वे मूर्ख और अबोधोंकी बातोंसे काम लायक मतलब उसी तरह निकाल लें, जिस प्रकार पत्थरोंसे सोना निकाला जाता है।

सुव्याहृतानि सूक्तानि सुकृतानि ततस्ततः ।
संचिन्वन् धीर आसीत शिलाहारी शिलं यथा ॥

बुद्धिमान् उसी प्रकार मूर्खोंके कहे अच्छे वाक्य, उत्तम कर्म और उत्तम वृत्तियोंका संग्रह करले, जिस प्रकार पत्थरोंसे आग निकाली जाती है ।

गन्धेन गावः पश्यन्ति वेदैः पश्यन्ति ब्राह्मणाः ।
चारैः पश्यंति राजानश्चक्षुर्भ्यामितरे जनाः ॥

अन्यान्य प्राणी तो सारी चीजें, अपनी आंखोंसे देखते हैं, किन्तु गायें गन्ध द्वारा, ब्राह्मण वेद और धर्म शास्त्रों द्वारा तथा राजा अपने कर्मचारियों द्वारा देखते हैं ।

भूयांस लभते क्लेशं या गौर्भवति दुर्दुहा ।
अथ या सुदुहा राजन्नैव तां वितुदंत्यपि ॥

जो गाय सहजहीमें दूध नहीं देती, वह तरह तरहसे सतायी जाती है, जो सहजहीमें दूध देती है, गो पालकलोग उसकी खूब खातिर करते हैं।

यदतप्तं प्रणमति न तत्संतापयंत्यपि ।
यच्च स्वयं नतं दारु न तत्संनमयंत्यपि ॥
एतयोपमया धीरः सन्नमेत बलीयसे ।
इन्द्राय स प्रणमते नमते यो बलीयसे ॥

एवं जो लौह आदि धातुएं अपने आप ही मुड़ जाती हैं, उन्हें तपानेकी आवश्यकता नहीं होती, तदनुसार समझदार आदमियोंको चाहिये, कि वे जहाँ जिस समय जबर्दस्तके पल्ले पड़

जायं, वहीं नम्र हो जायं। क्योंकि सबको एक लकड़ीसे हांकने पर कहीं कहीं ग्वालेसे गाय बननेकी नौबत आ पहुंचती है। फिर बड़ोंके सामने नम्र बननेसे देवता भी तो प्रसन्न होते हैं।

पर्जन्यनाथाः पशवो राजानो मन्त्रिबांधवाः।
पतयो बांधवाः स्त्रीणां ब्राह्मणा वेदबांधवाः॥

पशुओंके मित्र मेघ हैं, राजाओंके मित्र मन्त्री हैं, स्त्रियोंके मित्र उनके पति हैं, और ब्राह्मणोंके मित्र वेद और शास्त्र हैं। अर्थात् पशु, राजा, स्त्री और ब्राह्मण इनका क्रमानुसार मेघ, मन्त्री, पति और शास्त्रोंके बिना गुजारा नहीं हो सकता।

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते॥

सत्य द्वारा धर्मकी रक्षा होती है, अभ्यास द्वारा विद्याकी रक्षा होती है, उपटन और स्नान द्वारा रूपकी रक्षा होती है तथा सच्चरित्रता द्वारा कुलकी रक्षा होती है।

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः॥

मान या मितव्यय द्वारा धनकी, घुमानेसे घोड़ोंकी, डपटनेसे गायोंकी और सतीत्व द्वारा स्त्रियोंकी रक्षा होती है।

न कुलं वृत्तहीनस्य प्रमाणमिति मे मतिः।
अन्तेष्वपि हि जातानां वृत्तमेव विशिष्यते॥

हमारी समझमें अच्छे और बुरे कुलोंकी पहिचान उसमें उत्पन्न हुए व्यक्तियों द्वारा होती है। तदनुसार जो ब्राह्मण नीच

कर्म करता हैं, वह चाण्डाल और जो शूद्र अच्छे कर्म करता है उसे सज्जन समझना चाहिये ।

य ईर्षुः परवित्तेषु रूपे वीर्ये कुलान्वये ।
सुखसौभाग्यसत्कारे तस्य व्याधिरनन्तकः ॥

जो व्यक्ति दूसरेके धन, रूप, बल, सुख, सुन्दरता और सम्मानको देखकर जलता है, वह क्षय रोगीकी भांति घुल-घुलकर मरता है, उसके रोगकी औषधि धन्वन्तरिके पास भी नहीं है ।

अकार्यकरणाद्भीतः कार्याणां च विवर्जनात् ।
अकाले मंत्रभेदाच्च येन माद्येन्न तत्पिवेत् ॥

जो व्यक्ति किसी कार्य्यका आरम्भ कर तनिकसी बाधा पड़ते ही उसे अधूरा छोड़ बैठते हैं, उनके बराबर मूर्ख संसारमें दूसरा कोई नहीं हैं । किन्तु कार्य्य करनेसे पेश्तर इस बातका विचार भले प्रकारसे कर लेना चाहिये, कि अमुक कामके करनेसे मेरी कुछ हानि तो न होगी ? साथ ही अपने मनमें जिस किसी कामको करनेका निश्चय किया जाये, उसको तत्काल प्रकट न करना चाहिये !

विद्यामदो धनमदस्तृतीयोऽभिजनो मदः ।
मदा एतेवलिप्तानामेत एव सतां दमाः ॥

विद्वानोंका मत है, मूर्ख लोगोंको तीन प्रकारके नशे सदा रहते हैं । जैसे विद्यामद, धनमद और सहायकमद । किन्तु यही तीनों चीजें सज्जनोंके लिये सुखदायक गुण होते हैं ।

असन्तोऽभ्यर्थिताः सद्भिः कश्चित्कार्ये कदाचन ।

मन्यन्ते सन्तमात्मानमसन्तमपि विश्रुतम् ॥

सज्जन लोग यदि किसी दुष्टके पास जायें और दुष्ट उनके कथनानुसार कोई कार्य्य कर दे, तो वे उसे तत्काल साधु-सिद्ध मानने लगते हैं।

गतिरात्मवतां सन्तः सन्त एव सतां गतिः।
असतां च गतिः सन्तो नत्वसन्तः सतां गतिः ॥

महात्मालोग ज्ञानियोंको सुगति देते हैं और एकमात्र महात्माही सज्जनोंकी गति हैं, फिर असज्जन या दुष्टलोग भी सन्त और महात्माओंकी कृपासे सुगति पाते हैं, किन्तु महात्माओंको सुगति देनेकी क्षमता सिवा परमात्माके और किसीमें नहीं है।

शीलके गुण

जिता सभा वस्त्रवता मिष्टाशा गोमता जिता।
अध्वा जितो यानवता सर्वं शीलवता जितम् ॥

अच्छे वस्त्र पहननेवाला अपनी शोभासे सभाको जीत लेता है, जिसके पास दुधारू गायें हैं, वह मधुरताको जीत लेता है। जिसके पास सवारी है वह मार्गको जीत लेता है, और शीलवान् या अच्छे स्वभावका व्यक्ति तो सारे संसारको ही जीत लेता है।

शीलं प्रधानं पुरुषे तद्यस्येह प्रणश्यति।
न तस्य जीवितेनार्थो न धनेन न बन्धुभिः ॥

मनुष्योंमें शील ही प्रधान गुण है। जिसमें यह स्वर्गीय गुण नहीं है, उसके पास, समझना चाहिये, कि धन, बन्धु और सुखपूर्ण जीवन आदिमेंसे एक भी नहीं है।

स्वागतके नियम।

आढ्यानां मांसपरमं मध्यानां गोरसोत्तरम्।
तैलोत्तर दरिद्राणां भोजनं भरतर्षभ ॥

यदि किसीके घर किसी दिन कोई अतिथि आये, तो पहले परिचय द्वारा उसकी अवस्थाका ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। अनन्तर मधुर वार्त्तालापके साथ उसके खानेके लिये जो व्यवस्था की जाये, उसमें निम्न लिखित भेद रहना चाहिये। यदि अतिथि धनी हो, तो उसे सुन्दर सुन्दर उपहारोंके साथ गरिष्ट भोजन देना चाहिये। दरिद्रको तैलसिक्त और मध्यम स्थिति वालेको गोरस-जात द्रव्योंका भोजन देना चाहिये।

संपन्नतरमेवान्न दरिद्रा भुंजते सदा।
क्षुत्स्वादुतां जनयति सा चाढ्येषु सुदुर्लभा ॥
प्रायेण श्रीमतां लोके भोक्तुं शक्तिर्न विद्यते।
जीर्यन्त्यपि ही काष्ठानि दरिद्राणां महीपते ॥

दरिद्र व्यक्तियोंको खान-पानमें विशेष शौक नहीं होता, वे सामान्यसे भी सामान्यतर भोजनको अति प्रेमसे खाते हैं। क्योंकि भूखमें उन्हें वही मधुर मालूम होता है और धनवानोंको क्षुधा दुर्लभ होती है। दरिद्र लोग कठिनसे भी कठिन पदार्थोंको अनायास पचा लेते हैं।

साधारण उपदेश।

अवृत्तिर्भयमत्यानां मध्यानां मरणाद्भयम्।
उत्तमानां तु मर्त्यानामवमनात्पर भयम् ॥

दरिद्र व्यक्तियोंको जीवन निर्वाहोपयोगी वृत्ति न मिलने, मध्यम स्थितिवालोंको मरण और उत्तम प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको अपमानसे भय होता है।

ऐश्वर्यमदपापिष्ठा मदाः पानमदादयः।
ऐश्वर्यामदमत्तो हि नापतित्वा विबुध्यते॥

ऐश्वर्य्यका मद शराबके नशेसे भी अधिक होता है, क्योंकि धनसे मत्त हुआ व्यक्ति स्वामी और सेवक-किसीकी भी इज्जत लेनेमें आगा-पीछा नहीं देखता।

इन्द्रियैरिन्द्रियार्थेषु वर्तमानैरनिग्रहैः
तैरयं ताप्यते लोको नक्षत्राणि ग्रहैरिव॥

जिस प्रकार सूर्य्य और चन्द्रमा राहु और केतु द्वारा ग्रहीत होते हैं, उसी प्रकार विषयी लोग अवाध्य इन्द्रियों द्वारा विबश रहते हैं।

यो जितः पंचवर्गेण सहजेनात्मकर्षिणा।
आपदस्तस्य वर्धन्ते शुक्लपक्ष इवडुराट्॥

जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी दिन-ब-दिन वृद्धि होती है, उसी प्रकार मनको वशमें कर मनमाना नाच नचानेवाली उसकी स्वाभाविक सङ्गिनी इन्द्रियां असंयमी मनुष्यके दुःखोंको बढ़ाती हैं।

अविजित्य यथात्मानममात्यान् विजिगीषते।
अमित्रन्वाऽजितामात्यः सोवशः परिहीयते॥

जो मूर्ख अपने मनको बिना वशमें किये अपने कुटुम्बको वशमें करना चाहता है, और जो बिना अपने कुटुम्बको वश

किये शत्रुओंको वशमें करना चाहता है; वह अपने प्रयोजनोंमें सदा विफल होता है।

आत्मानमेव प्रथम द्वेष्यरूपेण योजयेत्।
ततोऽमात्यानमित्रांश्च न मोघं विजिगीषते॥

अतएव जो व्यक्ति अपने मनको शत्रुओंके समान ही बल प्रयोग पूर्वक जीतता है एवं इच्छा-पूर्त्ति द्वारा-सद्व्यवहार द्वारा परिवारको जीतता है, वही समयपर शत्रुओंपर विजय पा सकता है।

वश्येन्द्रियं जितात्मानं धृतदण्डं विकारिषु।
परीक्ष्य कारिणं धीरमत्यन्तं श्रीर्निषेवते॥

जो व्यक्ति जितेन्द्रिय है, मनको वशमें किये हुए हैं, बुरी वृत्तियोंके प्रति खड्ग हस्त हैं एवं प्रत्येक काम सोच समझ कर करता है, उस धीरको लक्ष्मी किसी समय भी नहीं छोड़ती।

रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वैर्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः॥

प्रत्येक मनुष्यका शरीर मानो एक रथ है, इन्द्रिय मानो उसके घोड़े हैं, और मन सारथि हैं; इस रथमें बैठने वाला मनुष्य यदि सावधान और धीर हुआ, तब तो वह अनायास अपनी जीवन-मञ्ज़िलोंको तै कर लेता है, और यदि असावधान हुआ, तो बीचमें ही गिर पड़ता है।

एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयितुमप्यलम्।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम्॥

जिस प्रकार चञ्चल और शैतान घोड़े असावधानीके साथ हांकनेवाले सारथिको मौका पाकर मार गिराते हैं, उसी प्रकार ये इन्द्रियां भी लापरवाह मनुष्यपर हावी हो मनमाना नाच नचाती हैं।

अनर्थमर्थतः पश्यन्नर्थं चैवाप्यनर्थतः।
इन्द्रियैरजितैर्बालः सुदुःखं मन्यते सुखम्॥

बिना इन्द्रियोंको वशमें किये मनुष्य अबोधोंकी भांति दुःखको सुख, अर्थको अनर्थ और अनर्थको अर्थ समझता है।

धर्मार्थौ यः परित्यज्य स्यादिन्द्रियवशानुगः।
श्रीप्राणधनदारेभ्यः क्षिप्रं स परिहीयते॥

जो धर्म और अर्थको छोड़कर इन्द्रियोंका दास हो बैठता है। उसके धन, प्राण और स्त्री सब नष्ट हो जाते हैं।

अर्थानामीश्वरो यः स्यादिन्द्रियाणामनीश्वरः।
इन्द्रियाणामनैश्वर्यादैश्वर्याद्भ्रश्यते हि सः॥

जो व्यक्ति इन्द्रियोंको बिना जीते धनका स्वामी बनता है, उसका धन नष्ट होते कुछ भी देर नहीं लगती।

आत्मनात्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः॥
बन्धुरात्मात्मनस्तस्य येनैवात्मात्मना जितः।
स एव नियतो बन्धुः स एव नियतो रिपुः॥

अतएव प्रत्येक बुद्धिमानको चाहिये कि वह इन्द्रियोंको जीत कर बुद्धि द्वारा अपने मनको वशमें करे! क्योंकि बुद्धि ही मनकी

सखी और बुद्धि ही मनकी शत्रु है। अतः जिसने अपने मनको नहीं जीता, उसकी बुद्धि शत्रु हो जाती है।

क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुरू।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुंपतः॥

जिस प्रकार छेद वाले छोटे जालमें बड़ी मछलियां नहीं पकड़ी जातीं, उसी प्रकार काम और क्रोध मनुष्यकी क्षुद्र बुद्धि द्वारा नहीं पकड़े जाते, ये दोनों अबला बुद्धिका नाश कर देते हैं।

समवेक्ष्येह धर्मार्थौ संभारान् योऽधिगच्छति।
स वै संभृतसभारः सतत सुखमेधते॥

जो व्यक्ति धर्म और अर्थका विचारकर सांसारिक सामग्रियों-को इकट्ठा करता है, वह बादको अक्षय सुखका भागी होता है!

यः पञ्चाभ्यन्तरान् शत्रुनविजित्य मनोमयान्।
जिगीषति रिपूनन्यान् रिपवोऽभिभवन्ति तम्॥

अतः जो व्यक्ति मानस जात काम, क्रोध, लोभ, मोह इन शत्रुओंको जीत लेता है, वह फिर अन्यान्य शत्रुओंको आसानीसे जीत लेता है।

दृश्यन्ते हि महात्मानो बध्यमानाः स्वकर्मभिः।

संसारमें छोटेसे लेकर बड़ा मनुष्य तक—ज्ञानीसे लेकर महाज्ञानी महात्मा तक उसी प्रकार कर्म-बन्धनसे जकड़े हुए हैं, जिस प्रकार हर एक राज्यका राजासे लेकर मामूली कारबारी तक कामोंमें फंसे रहते हैं।

असंत्यागात् पापकृताम पापांस्तुल्यो दण्डः स्पृशते मिश्रभावात्।

शुष्केणार्द्रं दह्यते मिश्रभावत्तस्मात्पापैः सह सन्धि न कुर्यात् ।

जो व्यक्ति शुद्धाचारी होनेपर भी दुष्टोंकी सङ्गतिमें बैठते हैं, वे गेहुओंके साथ घुनकी भांति दुष्टोंके साथ दण्ड पाते हैं, अत एव प्रत्येक समझदार व्यक्तिको आवश्यक है, कि वह पापियोंके पास न बैठे ।

निजानुत्पततः शत्रून्पञ्च पञ्चप्रयोजनान् ।
यो मोहान्न निगृह्णाति तमापद्ग्रसते नरम् ॥

जो मनुष्य पांच प्रकारके तापोंको देनेवाले क्रोधादि पांच शत्रुओंको नहीं जीतता, वह हमेशा आफतोंका शिकार बना रहता है ।

दुष्टोंके लक्षण ।

असंसूयार्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनायासो न भवति दुरात्मनाम् ॥

दुष्ट लोगोंमें, शान्ति, उदारता, प्रियवादिता, जितेन्द्रियता और साधुता आदि गुण नहीं होते ।

आत्मज्ञानमनायासस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक्चैव गुप्ता दानं च नैतान्यत्वेषु भारत ॥

उनमें आत्मज्ञान, स्थिरता, त्याग, प्रतिज्ञा-रक्षा और धर्म-रक्षा-का भाव नहीं होता ।

आक्रोशपरिवादाभ्यां विहिंसत्यबुधाबुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ॥

दुष्टलोग कटु वचनोंसे तथा निन्दा द्वारा सीधे साधु

व्यक्तियोंको कष्ट पहुंचाया करते हैं, अतएव साधु व्यक्तियोंको चाहिये, कि उनसे बोलकर पापके भागी न बनें और वे जो कुछ कहें, उसे अनसुनी कर दें।

हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम्।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणाँ क्षमा गुणवतां बलम्॥

दुष्टोंका बल हिंसा है, राजाओंका बल कानून है, स्त्रियोंका बल सेवा और सुश्रूषा है तथा सज्जनोंका बल क्षमा है।

आलापके गुण दोष।

वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहुभाषितुम्॥

प्रत्येक मनुष्यके लिये अपनी जिह्वाको दमन करना अत्यन्त कठिन है। अतः जो लोग निरन्तर बोलते हैं, वे बात-बातमें सत्य और अर्थ भरे वाक्योंका समावेश नहीं कर सकते। उनके मुँहसे असत्य और निरर्थक बातोंका निकलना स्वाभाविक है।

अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते॥

किन्तु याद रखना चाहिये, मधुर वाणी सदा कल्याण करती है और असत्य तथा कटु वाणी सदा अनर्थ घटाती है।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम्।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम्॥

कुल्हाड़ी द्वारा कटा हुआ वृक्ष फिर बढ़ जाता है, बाणका

घाव फिर भी भर जाता है, किन्तु कटु वचनों द्वारा हुआ घाव कभी नहीं भरता।

कर्णिनालीकनाराचान्निर्हरन्ति शरीरतः।
वाक्शल्यस्तु न निर्हन्तु शक्यो हृदिशयो हि सः॥

भीषण लगी हुई फांसोंको, योग्य चिकित्सक निकालकर दूर कर दे सकते हैं, किन्तु कटु बचनोंकी फांसको कोई भी नहीं निकाल सकता, क्योंकि वह सीधी हृदयको जाकर वेधती है।

वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि।
परस्य नमर्मसु ते पतन्ति तान्पण्डितो नावसृजेत्परेभ्यः॥

मुँहसे निकले हुए वचन-वाण मर्म-स्थानोंमें लगते हैं। उनके लगनेसे मनुष्य जीवनभर दिन रात पीड़ा पाता और बदला लेनेके लिये नये रास्तोंको उत्पन्न करता है, अतएव समझदार आदमियोंको चाहिये, कि वे भूलकर भी कभी किसीको कटु-वचन न कहें।

आसन्न मृत्युके लक्षण।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम्।
बुद्धिं तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति।
बुद्धौ कलुषभूतायां विनाशे प्रत्युपस्थिते।
अनयो नयसङ्काशो हृदयन्नापसर्पति॥

परमात्मा जिसको दुख देना चाहते हैं, सबसे पहले वे उसकी बुद्धि नष्ट कर देते हैं। फलतः बुद्धिनाश होनेपर वह नीच कर्म करने लगता है एवं मृत्यु होने तक सदा अन्याय कर्म करता रहता है।

तृतीय परिच्छेद ।

समदृष्टिका फल ।

सर्वतीर्थेषु वा स्नानं सर्वभूतेषु चार्जवम् ।
उभे त्वेते समे स्यातामार्जवं वा विशिष्यते ॥

संसारमें दो पुण्य-कर्म अन्यान्य शुभ कर्मोंकी अपेक्षा अत्यन्त महान् हैं, एक पवित्र तीर्थोंकी यात्रा और दूसरा समदृष्टि या सबको एकसा समझना । इन दोनोंमें भी समदृष्टिका फल अति महान् है ।

आर्जवं प्रतिपद्यस्व पुत्रेषु सततं विभो ।
इह कीर्तिं परां प्राप्य प्रेत्य स्वर्गमवाप्स्यसि ॥
यावत्कीर्तिर्मनुष्यस्य पुण्या लोके प्रगीयते ।
तावत्स पुरुषव्याघ्र स्वर्गलोके महीयते ॥

जो लोग सबको एकसा समझते हैं, वे इस लोकमें प्रतिष्ठा और सुरलोकमें परमपद प्राप्त करते हैं । उनकी कीर्त्ति चिरकालतक संसारमें रहती है ।

समभावः निवसति न्यायी पुरुषेषुसत्तम ।
अपक्षपाती स राजन् ! पुत्राणि न चिकीर्षति ॥

समदृष्टि उस व्यक्तिमें रहती है, जो न्यायी है । न्यायी समय आनेपर अपने पुत्रको भी दण्ड देनेसे नहीं चूकता, उसे अपने इकलौते पुत्रके प्राणोंका मोह नहीं होता और वह यह समझकर अपने पुत्रपर भी दया नहीं दिखलाता, कि नरहन्ता मेरा यह पुत्र

ठीक उन्हीं उपकरणोंसे बना है, जिनसे वह बना था, कि जिसकी इसने हत्या की है। जो पांच प्राण इसमें मौजूद हैं, वही उस मरे हुए व्यक्तिमें थे। पुत्र होनेसे मैं इसे क्षमा नहीं कर सकता। अतः वह प्रत्यक्षमें फांसीका अधिकारी है।

भक्तराज प्रह्लाद कथ्यते समदृष्टिवान्।
तस्य उदारन्तीहि इतिहास पुरातनम् ॥

भक्तराज प्रह्लाद इस विषयमें आदर्श स्थानीय हैं। उन्होंने समदृष्टिके न्यायको प्रत्यक्ष चरितार्थकर दिखलाया था। लोगोंको वह उपाख्यान अज्ञात है, अतएव उसे हम यहांपर लिखते है।

भक्तराज प्रह्लाद और समदृष्टि।

स्वयंवरे स्थिता कन्या केशिनी नाम नामतः।
रूपेणाप्रतिमा राजन् विशिष्टपतिकाम्यया ॥
विरोचनोऽथ दैतेयस्तदा तत्राजगाम ह।
प्राप्तु मिच्छंस्ततस्तत्र दैत्येंद्रं प्राह केशिनी ॥

जिस समय परम सुन्दरी केशिनी पतिकी कामना करके पति वरणके लिये तयार हुई, उस समय उसके पास दो वर आये। एक भक्तराज प्रह्लादके पुत्र विरोचन और एक तपोनिधि सुधन्वा। दोनोंने ही केशिनीसे अपना विवाह करनेकी इच्छा प्रकट की। दोनों ही बारी-बारीसे अपना परिचय और गुणोंत्कर्श दिखाकर केशिनीको पत्नी बनानेकी चेष्टा करने लगे।

किंब्राह्मणः स्विच्छ्रेयांसो दितिजा स्विद्विरोचन।
अथ केन स्म पर्यङ्कं सुधन्वा नाधिरोहति ॥

यह देख केशिनी बोली,—"देखिये, महाराज! शास्त्रका आदेश है, कि प्रत्येक स्त्री उच्चकुल सम्भूत, विद्या, बुद्धि और गुणोंमें सर्वश्रेष्ठ एवं उच्च वर्णके व्यक्तिको अपना पति बनाये। अतएव आप लोग पहले अपनी-अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित कीजिये।

प्राजापत्यास्तु व श्रेष्ठा वयं केशिनि सत्तमाः।
अस्माकं खल्विमे लोकाः के द्विजातयः॥

इतना सुनते ही विरोचन अपनी श्रेष्ठता प्रतिपादित करने लगा। बोला,—"देवी! हम प्रजापतिकी सन्तान हैं। देवता और ब्राह्मण हम लोगोंसे नीच वर्णके हैं।"

इहैवावां प्रतिक्षाव उपस्थाने विरोचन।
सुधन्वा प्रातरागन्ता पश्येयं वां समागतौ॥

केशिनी बोली,—"महाराज! मैं यों नहीं मानूंगी। मेरे आगे तो आपको अपने प्रतिद्वन्दीके साथ एक परीक्षा देनी होगी और उस समय निर्णयमें जो श्रेष्ठ साबित होगा, वही मेरा भावी पति है। इस समय रात्रि हो गयी है, प्रातः काल होते ही महा-भाग सुधन्वा आयंगे। अतएव आप रात्रि पर्य्यन्त और ठहरें।

तथा भद्रे करिष्यामि तथा त्वां भीरु भाषते।
सुधन्वानं च मां चैव प्रातर्द्रष्टासि सङ्गतौ॥

वीरोचनने केशिनीकी इस बातको मान लिया और वे रात्रि व्यतीत होनेकी प्रतीक्षा करने लगे।

अतीतायां च शर्वर्यामुदिते सूर्यमण्डले।
अथाजगाम तन्देशं सुधन्वा राजसत्तम॥

तदन्तर रात्रि बीत गयी और आकाशमें सूर्य्य उदय हुए। उस समय तपोनिधि सुधन्वा अपने प्रातः कृत्यसे निपट कर केशिनीके पास आये।

विरोचनो यत्र विभो केशिन्या सहितः स्थितः।
सुधन्वा च समागच्छत्प्राह्लादिं केशिनीं तथा॥
समागतं द्विजं दृष्ट्वा केशिनी भरतर्षभ।
प्रत्युत्थायासनं तस्मै पाद्यमर्घ्यं ददौ पुनः॥

विरोचन उस समय भी वहीं मौजूद थे और स्वर्ण सिंहासन-पर बैठे हुए सुधन्वाके आनेकी बाट जोह रहे थे। सुधन्वाको आता देखकर केशिनीने उनका स्वागत किया और अर्घ्य-पाद्य देकर ब्राह्मणोचित आसनपर बैठाया।

विरोचन स्वर्ण सिंहासनपर बैठे हुए थे और इस समय सुधन्वाको कुशासन दिया गया। यह देख विरोचन सुधन्वासे बोले,—"हे महाभाग! आप उस तिनकोंके आसनको छोड़ दीजिये और मेरे पास इस स्वर्ण सिंहासनपर बैठिये।"

अन्वालभे हिरण्मयम्प्राह्लादे ते वरासनम्।
एकत्वमुपसम्पन्नो न त्वाऽसेहँ त्वया सह॥

यह सुन कर सुधन्वाने कहा,—"नहीं महाराज! मैं अपने योग्य आसनको छोड़कर आपके साथ एक आसनपर नहीं बैठ सकता आप राज-पुत्र हैं। आपको स्वर्ण सिंहासन ही शोभा देता है। और मैं ब्राह्मण हूं, अतएव मैं कुशासनपर ही बैठनेके योग्य हूं।"

तवार्हतेतु फलकं कूर्चं वाप्यथवा वृसी।

सुधन्वन्नत्वमर्होऽसि मया सह समासनम् ॥

सुधन्वाके इस उत्तरको सुनकर विरोचन केशिनीसे हँसते हुए बोले,—"सुभगे! अब तो आप इस विषयमें निःसन्देह हो गयी होगी, कि ब्राह्मणोंकी अपेक्षा हम ही उच्च और श्रेष्ट हैं। यदि सुधन्वा हमसे श्रेष्ट या उच्च होते तो वे हमारे साथ एक ही आसनपर बैठते। किन्तु विद्वान् होनेके कारण उन्होंने अपनी हीनता बिना किसी आपत्तिके अपने मुँहसे ही स्वीकार कर ली। अब तो तुम मेरे ही साथ विवाह करोगी न?"

पितापुत्रौ सहासीतां द्वौ विप्रौ क्षत्रियावपि।
बृद्धौ वैश्यौ च शूद्रौ च न त्वन्यावितरेतरम् ॥
पिता हिते समासीनमुपासीतैव मामधः।
बालः सुखैधितो गेहे न त्वं किञ्चन बुध्यसे ॥

सुधन्वा बोले,—"राजपुत्र! मेरे उक्त कथनका यह भाव नहीं है। वरन् मैंने नीतिकी रक्षा करनेके लिये ऐसा कहा है। नीतिका कथन है, कि पिता-पुत्र, दो ब्राह्मण, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध और दो शूद्रोंको एकासनपर न बैठना चाहिये। तदनुसार जब मैं तुम्हारे पिताके पास जाया करता था, तब वे सिंहासन छोड़कर नीचे अलग आसनपर बैठ, मेरी पूजा किया करते थे। तुम उस समय बालक थे और निरन्तर महलोंमें रहा करते थे, इसीसे तुम्हें इस शिष्टाचारका पता नहीं है। हम ब्राह्मण सन्तान हैं। विद्वान् ब्राह्मण सब वर्णोंके गुरु हैं, अतएव ब्राह्मणोंकी अपेक्षा लोग श्रेष्ट नहीं हो सकते। यह वेद और शास्त्रोंका कथन

है। तुम प्रह्लाद जैसे धर्मात्मा राजाके पुत्र होते हुए भी ऐसी शास्त्र-विरुद्ध बात क्यों कहते हो ?"

हिरण्यं च गवाश्वं च यद्वित्तमसुरेषु नः।
सुधन्वन्विपणे तेत प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥

यह सुन विरोचन मारे गुस्सेके तमतमा उठा। बोला—"मैं तुम्हारे इस कथनका विश्वास नहीं कर सकता। अतः मैं तुम्हारे साथ बहुतसे धन रत्नकी बाजी बदकर बाद करूंगा और उसकी मीमांसा किसी अच्छे विद्वानसे कराऊंगा। बोलो, इस बातमें तुम सहमत हो न ?"

हिरण्यं च गवाश्वं च तवैवास्तु विरोचन।
प्राणयोस्तु पणं कृत्वा प्रश्नं पृच्छाव ये विदुः॥

सुधन्वा बोले—"सहमत हूं। पर धन-रत्नकी बाजी नहीं। मैं ब्राह्मण हूं—मेरे पास धन-रत्न नहीं है। इसलिये प्राणोंकी बाजी लगानी चाहिये। यदि मैं हारा, तो तुम मेरे प्राणोंके मालिक होगे और यदि तुम हार जाओगे, तो मैं तुम्हारे प्राणोंका मालिक हो जाऊंगा।"

आवां कुत्र गमिष्यावः प्राणयोर्विपणे कृते।
नतु देवेष्वहं स्थाता न मनुष्येषु कर्हिचित्॥

विरोचनने कहा—"बहुत ठीक। मुझे इसमें कुछ आपत्ति नहीं हैं। किन्तु अब यह स्थिर हो जाना चाहिये, कि हमारे और तुम्हारे विवादकी मीमांसा कौन करेगा। देखना, मध्यस्थ चुनते समय इस बातका खयाल रखना, कि प्रजापतिकी सन्तान देवता और

मानवोंके पास नहीं जा सकती।"

> पितरं ते गमिष्याव: प्राणयोर्विपणे कृते।
> पुत्रस्यापि स हेतोर्हि प्रह्लादो नानृतं वदेत्॥

सुधन्वा बोले,—"न सही, मैं तुम्हें उक्त दोनों जातियोंके व्यक्तियोंके पास न ले जाऊंगा। किन्तु तुम्हारे पिता प्रह्लादको तो मध्यस्थ चुननेमें तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है। मेरा विश्वास है, धर्मात्मा प्रह्लादकी भाँति न्यायी, समद्रष्टा और पक्षपात-शून्य पुरुष संसार भरमें दूसरे नहीं हैं। उनके जैसा न्याय-सङ्गत निर्णय और कोई नहीं कर सकता।"

> एवं कृतपणौ क्रुद्धौ तत्राभिजग्मतुस्तदा।
> विरोचनसुधन्वानौ प्रह्लादो यत्र तिष्ठति॥
> इमौ तौ संप्रदृश्येते याभ्यां न चरितं सह।
> आशीविषाविव क्रुद्धावेकमार्गाविहागतौ॥

अस्तु मध्यस्थ स्थिर होते ही उक्त दोनों व्यक्ति राजा प्रह्लादके पास गये। प्रह्लाद इन दोनोंको परस्परमें क्रुद्ध हो आते देखकर मन ही मन सोचने लगे—"ये दोनों विषधर सर्पके समान क्रोधमें भरे मेरे पास क्यों आ रहे हैं? मैंने इन्हें पहले तो कभी एक साथ आते देखा नहीं, आज यह अनूठी बात कैसे देख रहा हूं।"

> किं वै सहैवं चरथो न पुरा चरथ: सह।
> विरोचनैतत्पृच्छामि किं ते सख्यं सुधन्वना

प्रह्लाद ऐसा सोच ही रहे थे, कि विरोचन और सुधन्वा सभामें आ पहुंचे। प्रह्लादने विरोचनसे दूरसे ही पूछा—"पुत्र!

क्या इन तपस्वीसे तुमने मैत्री कर ली है?"

न मे सुधन्वना सख्यं प्राणयोर्विपणावहे।
प्रह्लाद तत्वं पृच्छामि मा प्रश्नमननृतं वदेः॥

विरोचन पिताके पास पहुंचाते ही बोला,—"नहीं तात! ये ता मेरे शत्रु हैं। प्रतिद्वन्द्वी हैं। इन्होंने एक बातपर प्राणोंका दाव लगाया है। आप हमारे विवादके मीमांसक बनिये।"

उदकं मधुपर्कं वाप्यानयन्तु सुधन्वने।
ब्रह्मन्नभ्यर्चनीयोऽसि श्वेता गौः पीवरी कृता॥

विरोचन और सुधन्वाके पास आ जानेपर प्रह्लाद सिंहासन छोड़कर खड़े हो गये और ब्राह्मणसे बोले,—"हे देव! आप हमारे पूजनीय ब्राह्मण हैं, इसलिये मधुपर्क और पाद्य ग्रहण कीजिये।"

उदकं मधुपर्कं च पथिष्वेवार्पितं मम।
प्रह्लाद त्वं तु मे तथ्यं प्रश्नं प्रब्रूहि पृच्छतः।
किं ब्राह्मणाः किञ्छ्रेयाँस उताहो स्विद्विरोचनः॥

सुधन्वा बोले,—"महोदय! आपका दिया आदर और सम्मान हम तबतक नहीं ग्रहण करेंगे, जबतक हमारे विवादकी मीमांसा न हो जायगी। हमने आपको अपना मीमांसक बनाया है। कृपाकर सत्य निर्णय कीजिये। विवादका विषय है, ब्राह्मण और दैत्योंमें उत्तम कौन है?"

पुत्र एको मम ब्रह्मंस्त्वं च साक्षादिहास्थितः।
तयोर्विवदतोः प्रश्नं कथम स्मद्विधो वदेत्॥

प्रह्लाद डरे और हाथ जोड़कर सुधन्वासे बोले—"देव ! आपने मुझे मध्यस्थ बनाकर अच्छा नहीं किया। विरोचन मेरा इकलौता बेटा है। आप जैसे तपोनिधि ब्राह्मण विवादी बनकर आये हैं। मैं आपकी बात भी नहीं टाल सकता। किन्तु इस समय मेरी स्थिति बड़ी ही नाजुक है, मैं आपके विवादका क्या और कैसे निर्णय करूं ?"

गां प्रदद्यास्त्वौरसाय यद्वान्यत्स्यात्प्रियं धनम्।
द्वयोर्विभदतोस्तथ्यं वाच्यं च मतिमंस्त्वया॥

सुधन्वा बोले,—"राजन्! इस समय आप मेरा या अपने पुत्रका मोह त्याग दीजिये और न्याय-दण्ड धारण पूर्वक उचित मीमांसा कीजिये।"

अथ यो नैव प्रब्रूयात्सत्यं वा यदि वानृतम्।
एतत्सुधन्वन्पृच्छामि दुर्विवक्ता स्म किं वसेत्॥

प्रह्लादने कहा,—"महाराज! यदि मैं इस विषयमें मौन रहूं या आपको आज्ञा दूँ, कि आप लोग किसी दूसरेको अपना मध्यस्थ बनाइये; तो मेरी क्या गति हो ?"

यां रात्रिमधिविन्ना स्त्री यां चेवाक्षपराजितः।
यां च भाराभितप्तांगो दुर्विवक्ता स्मतां वसेत्॥
नगरे प्रतिरुद्धः सन् बहिर्द्वारे बुभुक्षितः।
अमित्रान् भूयसः पश्येद्यः साक्ष्यमनृतं वदेत्॥
पञ्च पश्वनृते हन्ति दश हन्ति गवानृते।
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं पुरुषानृते॥

हन्ति जातानजातांश्च हिरण्यार्थेऽनृतं वदन्।
सर्वं भूम्यनृते हन्ति मास्म भूम्यनृतं वदेः ॥

सुधन्वा बोले:—"राजन्! जो लोग सत्य कहते हिचकते हैं; उनकी गति वही होती है; जो जुएमें हारे व्यक्ति; सौति और भारवाहीकी होती है। जो साक्षी होकर झूठका आश्रय लेता है; वह रक्षकहीन शत्रुओंसे घिर कर भूखा मरता है। पशुओंके पीछे झूठ बोलनेसे पाँच हत्याओंका और मनुष्योंके लिये झूठ बोलनेसे हजार हत्याओंका पाप लगता है। सुवर्णके लालचसे झूठ बोलने पर जात और अजात मनुष्यको मारनेका पाप लगता है भूमि और स्त्रीके लिये झूठ बोलनेसे संसार भरके मनुष्योंके मरनेका पाप लगता है। अतएव राजन्; आपको पुत्रका मोहकर कभी असत्य न बोलना चाहिये।"

मत्तः श्रेयानङ्गिरा वं सुधन्वा त्वद्विरोचनः।
मातास्य श्रेयसो मातुस्तस्मात्वं तेन वै जितः ॥
विरोचन सुधन्वायं प्राणानामीश्वरस्तव।
सुधन्वन्पुनरिच्छामि त्वया दत्तं विरोचनम् ॥

यह सुन प्रह्लाद बोले—"यदि ऐसा है, तो मैं किसी तरह भी असत्य न बोलूंगा। यदि सत्यके लिये पुत्रके प्राण जायें, तो कुछ शोक नहीं। हे महातप सुधन्वा! विरोचनको चाहे तुम छोड़ो या मारो, पर मैं दो भाँत न करूंगा, मेरे लिये तुम विरोचनसे भी अधिक प्रिय हो। विरोचन! सुनो, महातप सुधन्वाके पिता महर्षि अंगिरा मुझसे अति श्रेष्ठ हैं, सुधन्वाकी माता तुम्हारी

माता कयाधूसे अत्यन्त श्रेष्ठ हैं एवं तुमसे महाभाग सुधन्वा अति श्रेष्ठ हैं। अतएव तुम हारे और सुधन्वा जीते। अब सुधन्वा तुम्हारे प्राणोंके मालिक हैं, वे तुम्हें चाहे कृपाकर छोड़ दें या तुम्हारे प्राण लेलें।"

यद्धर्ममवृणीथास्त्वं न कामादनृतं वदीः।
पुनर्ददामि ते पुत्रं तस्मात्प्रह्लाद दुर्लभम्॥
एष प्रह्लाद पुत्रस्ते मया दत्तो विरोचनः।
पादप्रक्षालनं कुर्यात्कुमार्याः सन्निधौ मम॥

यह सुन महातप सुधन्वा प्रह्लादके न्याय और समदृष्टिसे अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले—"हे महाभाग! आपकी इस सत्य-वादितापर मैं प्रसन्न हो, विरोचनको आपको पुरस्कारमें देता हूं। परन्तु इसे इतना अवश्य करना होगा, कि केशिनीके साथ मेरा पाणि-ग्रहण होते समय यह मेरे चरण धोये और कहे, कि सचमुच ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं।"

हारकर विरोचनको सुधन्वाकी बात पूरी करनी पड़ी और केशिनी सुधन्वाकी ही हुई।"

साधारण उपदेश।

न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत्।
यंतु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्ति तत्॥

देवता लोग, लाठी लेकर पशुओंकी भांति मनुष्योंकी रक्षा नहीं करते। वे जिसको रक्षा करना चाहते हैं, उसको उत्तम बुद्धि देते हैं।

यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिध्यन्ते नात्र संशयः ॥

जैसे जैसे दैवरक्षित मनुष्यकी बुद्धि शुभ कर्म्मोंकी ओर प्रवृत्त होती है, वैसे सारे काम सिद्ध होते जाते हैं।

नैनं छन्दांसि वृजिनात्तारयन्ति मायाविनं माया मर्तमानम् ।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दांस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ॥

यदि कोई कपटी और मायावी मनुष्य यह कहकर पापोंसे छुटकारा पाना चाहे, कि मेरी रक्षा वेद भगवान् या पुराण पुरुष करेंगे तो उसे याद रखना चाहिये कि वेद और पुराण किसीके साक्षी नहीं हैं, वे धर्मात्माकी ही रक्षा करते हैं। इनका कार्य प्रत्येक व्यक्तिके शुभाशुभ कर्म बता देता है, बताकर वे उससे इसी प्रकार अलग हो जाते हैं, जिस प्रकार पङ्ख पैदा हो जाने पर पक्षी- शिशुको उसके माता-पिता त्याग देते हैं। वास्तवमें मनुष्यके रक्षा-कर्त्ता और संहारक उसके किये हुए कर्म ही हैं।

मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पंथाः प्रदुष्टः ॥

महात्माओंका कथन है, कि किसी मनुष्यको नशेबाजी, विवाद, बैर, स्त्री-पुत्र और सजातियोंसे द्वेष, राजासे शत्रुता, औरतों तथा मर्दोंसे झगड़ा तथा जितने भी अशुभ कर्म हैं, उन्हें न करना चाहिये।

सामुद्रिकं वणिजं चोरं शलाकधूर्त्तं पूर्वं च चिकित्सकं च ।
अरिं च मित्रं च कुशीलवं च नैतान्साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ॥

बुद्धिमानोंको उचित है, कि वे अपने मामले-मुकद्दमोंमें हाथ देखनेवाले, बनिये, पुराने-चोर, धूर्त्त-ज्योतिषी; शत्रु के मित्र, और रण्डीके भडुओंको कभी अपना गवाह न बनावे।

मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः।

एतानि चत्वार्यभयंकराणि भयं प्रतच्छन्त्यय थाकृतानि ॥

जो लोग अन्यान्य आदमियोंकी नजरोंमें बड़ा बननेके लिये, होम और पूजा पाठ करते हैं, विद्या पढ़ते हैं, यज्ञानुष्ठान करते हैं, उनका कभी कल्याण नहीं होता। परन्तु जो व्यक्ति निष्काम होकर—फलाशाका त्यागकर-उक्त कर्मोंको करते हैं उनको सुख होता है।

हत्यारे कौन है ?

अगारदाही गरदः कुंडाशी सोमविक्रयी।

पर्वकारश्च सूची च मित्रध्रुक पारदारिकः ॥

भ्रूणहा गुरुतल्पी च यश्च स्यात्पानपो द्विजः।

अतितीक्ष्णश्च काकश्च नास्तिको वेदनिन्दकः ॥

स्रुवग्रहणो व्रात्यः कीनाश श्चात्मवानपि।

रक्षेत्युक्तश्च यो हिंस्यात् सर्वे ब्रह्महभिः समः ॥

दूसरेके घरमें आग देने वाला, किसोको जहरदेने वाला, हलालका खाने वाला, नशीली चीजें बेचने वाल हथियार बनाने वाला, ढोंगी, ज्योतिषो, मित्रवैरी, पर-स्त्री-गमन करने वाला, गर्भ गिराने वाला, गुरुकी शय्यापर पैर रखने वाला, शराबी ब्राह्मण, क्रोधी, दुःखियोंको दुःख देने वाला, नास्तिक, धर्म-

निन्दक, डाकू, संस्कारच्युत, दूसरेके परिश्रमसे एकत्रित की हुई वस्तुओंको ठगलेने वाला, और शरणागतोंकी रक्षा करनेसे मुंह मोड़ने वाला. ये सब हत्यारे कहे जाते हैं।

तृणोल्कया ज्ञायये जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः।

शूरो भयेष्वर्थ कृच्छ्रेषुधीरः कृच्छ्रेष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च

तपानेसे सुवर्णकी परीक्षा होती है, चरित्रसे धर्मकी परीक्षा होती है, व्यवहारसे साधुताकी परीक्षा होती है, युद्धसे शूर-वीरताकी, कठिन कार्य्योंसे बुद्धि और आपत्तियोंसे मित्र और स्नेहियों की परीक्षा होती हैं।

सर्वनाशक कौन है?

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणान्धर्मचर्यामसूया।

क्रोधः श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः॥

बुढ़ापा रूपको, आशा धैर्य्यको, मृत्यु प्राणोंको, दुष्टता धर्मको क्रोध लक्ष्मीको, दुष्टोंकी सङ्गति शीलको, काम लज्जाको और अभिमान सबको नष्ट कर देता है।

साधारण उपदेश।

श्रीर्मंगलात्प्रभवति प्रागल्भ्यात्संप्रवर्धते।

दाक्ष्यात्तु कुरुते मूलं संयमात्प्रतितिष्ठति॥

लक्ष्मी शुभकामोंसे प्राप्त होती है, गम्भीरतासे बढ़ती है, निपुणतासे स्थायी होती है और इच्छाओंको जीत लेनेसे चेरी हो जाती है।

अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं।

पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञता च ॥

संसारमें प्रत्येक मनुष्य, सुबुद्धि, कुलीनता इन्द्रिय संयम विद्या, पराक्रम वाक् चातुरी, दान और कृतज्ञता द्वारा प्रसिद्धि लाभ करता है ।।

एतान्गुणांस्तात महानुभावानेको गुणः संश्रयते प्रसह्य ।

राजा यादा सत्कुरुते मनुष्य सर्वान्गुणानेष गुणो बिभाति ॥

किन्तु राजा या धनी लोग केवल एक गुणसे ही प्रसिद्धि प्राप्त करलेते हैं और वह गुण हैं, गुणियोंके गुणोंका उचित आदर करना—विद्वानोंको सम्मानित करना ।

स्वर्ग-प्राप्ति और महात्मा बननेके उपाय ।

अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।

चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्भिश्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ॥

संसारमें आठ गुण सर्व प्रसिद्ध हैं । जिनमें चार प्रत्येक मनुष्यको-यदि वह उन्हें ग्रहणकर चरितार्थ करे, तो कीर्त्तिके साथ परम पद प्राप्त करा देते है और शेष चारगुण मनुष्यको महात्मा बना देते हैं ।

यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्वतानि सद्भिः ।

दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनु यान्तिसन्तः ॥

वे आठ गुण कौनसे हैं, सुनिये । यज्ञ, दान, विद्या और तप ये चार गुण पहले विभागके हैं । इन्द्रियोंको जीतना, सत्य बोलना, परोपकार करना और सबपर दया करना ये पिछले विभागके हैं ।

धर्मके अङ्ग।

इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्ट विधः स्मृतः॥

यज्ञ करना, विद्या पढ़ना, दान करना, तप करना, सत्य बोलना, क्षमा, दया और निर्लोभ,—ये धर्मके आठ अङ्ग हैं।

तत्र पूर्वचतुवर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते।
उत्तरश्च चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति॥

किन्तु यज्ञ, विद्या, दान और तप पाखण्डी लोग भी प्रसिद्धि के लोभसे चरितार्थ कर सकते हैं। किन्तु सत्य, क्षमा, दया और निर्लोभ, इनको महात्माओंके सिवा और कोई चरितार्थ नहीं कर सकता।

साधारण उपदेश।

न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा न ते वृद्धा ये न वदन्ति धर्मम्।
नासौ धर्मो यत्र न सत्यमस्ति न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम्॥

जिस सभा या मजलिसमें बूढ़े लोग नहीं होते, वह असली सभा नहीं है, जो बूढ़े धर्म-सङ्गत उपदेश नहीं देते, वे बूढ़े नहीं कहे जा सकते। जिस धर्मोपदेशमें सत्यका समावेश नहीं होता, वह असली धर्मोपदेश नहीं है और वह सत्य नहीं है, जिसमें थोड़ासा भी कपट मिला है।

स्वर्ग-प्राप्तिके साधन।

सत्यं रूपं श्रुतं विद्या कल्यं शीलं बलं धनम्।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः॥

सत्यता, विनय, सद्-ग्रन्थ अध्ययन, विद्या, कुलीनता, शील, बल, धन, तेज वाणीकी मधुरता—ये दशों गुण प्रत्येक मनुष्यको परम-पद दिला सकते हैं।

पाप-पुण्य विवेचन।

पापं कुर्वन्पापकीर्तिः पापमेवाश्नुते फलम्।
पुण्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यमत्यंतमश्नुते।

जो मनुष्य जैसा कर्म करता है, उसे वैसा ही फल प्राप्त होता है। पापीलोग पापकर्म करते हुए परिणाममें पाप ही प्राप्त करते हैं और साधु लोग शुभकर्म करते हुए उनका फल भी शुभ ही प्राप्त करते हैं।

तस्मात्पापं न कुर्वीत पुरुषः शंसितव्रतः।
पापं प्रज्ञां नाशयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥

अतएव इस बातको जानकर कोई भी समझदार व्यक्ति पापकी ओर अपनी प्रवृत्तिको न ले जाये। क्योंकि बारम्बार पाप करने वाले व्यक्तियोंकी बुद्धि नष्ट हो जाती है।

नष्टप्रज्ञः पापमेव नित्यमारभते नरः।
पुण्यां प्रज्ञां वर्धयति क्रियमाणं पुनः पुनः॥

जब बुद्धि नष्ट हो जाती है, तब वह आदमी निरन्तर पाप ही करता है और जो लोग सदा पुण्य कर्म करते हैं वे स्वप्नमें भी पाप-कर्मोंके पास नहीं जाने पाते, सदा शुभ कर्म ही करते हैं एवं शुभकर्मोंसे उनकी बुद्धि दिनपर दिन उज्ज्वल होती जाती है।

वृद्धप्रज्ञः पुण्यमेव नित्यमारभते नरः
नित्यं कुर्वन्पुण्यकीर्तिः पुण्यं स्थानं स्म गच्छति ॥
तस्मात्पुण्यं निषेवेत पुरुषः सुसमाहितः ॥

पुण्य करनेसे मनुष्यको यश मिलता है और यशस्वी सदा स्वर्ग ही पाते हैं। अतएव समझदार—पाप-पुण्यका परिणाम ज्ञाता-मनुष्य सदा पुण्यानुष्ठान ही करे। यही उसका परम धर्म है और यही उसका परम कर्त्तव्य है।

साधारण उपदेश।

असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः।
स कृच्छ्रं महदाप्नोति न चिरात्पापमाचरन् ॥

डाही, परकार्य्य-विध्वंसक, कटु-बचन कहने वाला, सबसे वैर करने वाला, और दुष्ट—ये लोग पापका आश्रय लेते ही नष्ट हो जाते हैं।

अनुसूयुः कृतप्रज्ञः शोभनान्याचरन्सदा।
न कृच्छ्रं महदाप्नोति सर्वत्र च विरोचते ॥

जो किसीकी वृद्धि देखकर मनमें कष्ट नहीं पाता, वरन् सन्तुष्ट होता है, जो आपत्ति और विपत्तिमें सब समय अपनी बुद्धिको ही ठिकानेपर रखता है, वह शुभ करनेपर किसीकी बाधाका शिकार नहीं होता और सदा सुख पाया करता है।

प्रज्ञामेवावगमयति यः प्राज्ञेभ्यः स पण्डितः।
प्राज्ञो ह्यवाप्य धर्मार्थौ शक्नोति सुखमेधितुम् ॥

जो बुद्धिसे बुद्धिको बढ़ाता है, पण्डित वही कहाता है।

उसे बिना धनके सुख और बिना बहुतसे शुभ कर्म किये ही पुण्य प्राप्त होजाता है।

दिवसेनैव यत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षाः सुखं वसेत्॥

मनुष्य दिनमें ऐसे कार्य्य करे, जिससे रात्रिको सुखके साथ निद्रा आये। आठ महीनेमें ऐसा परिश्रम करे, जिससे वर्षाऋतुमें सुखसे रह सके।

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन यत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत्॥

तदनुसार प्रत्येक व्यक्तिको जवानीमें ऐसे काम करने चाहिये, जिससे बुढ़ापा शान्ति पूर्वक व्यतीत हो जाये और जीवनमें वे काम करने चाहिये, जिनसे मृत्युके उपरान्त स्वर्ग-सुख मिल सके।

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम्॥

अन्नके पच जानेपर, स्त्रीकी जीवन समाप्तिमें, वीरकी संग्रामजयके बाद और कर्मयोगी तपस्वीकी सिद्धिके बाद प्रशंसा करनी चाहिये।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवतीर्यते॥

अधर्मसे पैदा किये धनसे एकबार पाप छिप सकते हैं, किन्तु "उघरे अन्त न होई निबाहू" जब पापोंका भण्डा फोड़ हो जाता है, तब वह धन कपूरकी तरह उड़ जाता है।

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः॥

जितेन्द्रियोंके शासक उनके गुरु होते हैं, दुष्टोंके शासक राजा या न्यायाधीश होते हैं और छिपकर पाप करने वालोंके शासक यमराज होते हैं।

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च।

ऋषि, नदी, महात्मा, वंश और स्त्रियोंके चरित्र इनका अन्त या आदि जानना सामर्थ्यसे बाहर है।

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलभाग्राजंश्चिरं पालयते महीम्॥

जो क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, दान करता है और जाति वालोंके प्रति सद्भाव रखता है, वह बहुत दिनोंतक सुखसे निवास करता है।

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम्॥

शूर, विद्वान और सेवक ये तीन ही व्यक्ति सुख-गर्भा पृथ्वीके सुख प्राप्त किया करते हैं।

कर्मोंके विभाग।

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च॥

जो काम सुबुद्धि द्वारा सम्पादित होते हैं, वे श्रेष्ठ कहाते हैं,

उसे बिना धनके सुख और बिना बहुतसे शुभ कर्म किये ही पुण्य प्राप्त होजाता है।

दिवसेनैव यत्कुर्याद्येन रात्रौ सुखं वसेत्।
अष्टमासेन तत्कुर्याद्येन वर्षा सुखं वसेत्॥

मनुष्य दिनमें ऐसे कार्य्य करे, जिससे रात्रिको सुखके साथ निद्रा आये। आठ महीनेमें ऐसा परिश्रम करे, जिससे वर्षाऋतुमें सुखसे रह सके।

पूर्वे वयसि तत्कुर्याद्येन वृद्धः सुखं वसेत्।
यावज्जीवेन यत्कुर्याद्येन प्रेत्य सुखं वसेत्॥

तदनुसार प्रत्येक व्यक्तिको जवानीमें ऐसे काम करने चाहिये, जिससे बुढ़ापा शान्ति पूर्वक व्यतीत हो जाये और जीवनमें वे काम करने चाहिये, जिनसे मृत्युके उपरान्त स्वर्ग-सुख मिल सके।

जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम्।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम्॥

अन्नके पच जानेपर, स्त्रीकी जीवन समाप्तिमें, वीरकी संग्रामजयके बाद और कर्मयोगी तपस्वीकी सिद्धिके बाद प्रशंसा करनी चाहिये।

धनेनाधर्मलब्धेन यच्छिद्रमपिधीयते।
असंवृतं तद्भवति ततोऽन्यदवतीर्यते॥

अधर्मसे पैदा किये धनसे एकबार पाप छिप सकते हैं, किन्तु "उघरे अन्त न होई निबाहू" जब पापोंका भण्डा फोड़ हो जाता है; तब वह धन कपूरकी तरह उड़ जाता है।

गुरुरात्मवतां शास्ता शास्ता राजा दुरात्मनाम्।
अथ प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥

जितेन्द्रियोंके शासक उनके गुरु होते हैं, दुष्टोंके शासक राजा या न्यायाधीश होते हैं और छिपकर पाप करने वालोंके शासक यमराज होते हैं।

ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम्।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च।

ऋषि, नदी, महात्मा, वंश और स्त्रियोंके चरित्र इनका अन्त या आदि जानना सामर्थ्यसे बाहर है।

द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी।
क्षत्रियः शीलमाप्नार्जश्चिरं पालयते महीम् ॥

जो क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी पूजा करता है, दान करता है और जाति वालोंके प्रति सद्भाव रखता है, वह बहुत दिनोंतक सुखसे निवास करता है।

सुवर्णपुष्पां पृथिवीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ॥

शूर, विद्वान और सेवक ये तीन ही व्यक्ति सुख-गर्भा पृथ्वीके सुख प्राप्त किया करते हैं।

कर्मोंके विभाग।

बुद्धिश्रेष्ठानि कर्माणि बाहुमध्यानि भारत।
तानि जङ्घाजघन्यानि भारप्रत्यवराणि च ॥

जो काम सुबुद्धि द्वारा सम्पादित होते हैं, वे श्रेष्ठ कहाते हैं,

जो परिश्रमसे सम्पादित होते हैं, वे मध्यम हैं और जो चुपचाप कपट द्वारा सम्पादित होते हैं; वे नीच हैं।

चतुर्थ परिच्छेद।

आत्रेय और साध्य सम्वाद।

अत्रैवोदाहरन्तिममितिहासं पुरातनम्।
आत्रेयस्य च संवादं साध्यानां चेति नः श्रुतम्॥

साधारण उपदेशोंमें आत्रेय और साध्य नामक देवताओंमें परस्पर हुआ वार्त्तालाप इस स्थानपर उल्लेख करने योग्य है। उससे अनेक ज्ञान गर्भ वातोंका स्पष्टीकरण होता है। संसारी उनसे अनेक नयी बातें जान सकता है।

चरन्तं हंसरूपेण महर्षिं संशितव्रतम्।
साध्या देवा महाप्राज्ञं पर्यपृच्छन्त वै पुरा॥

एक समय परमहंस, तपोनिधि और महा बुद्धिमान् आत्रेय संसारकी दशा देखनेके लिये परिभ्रमण कर रहे थे; उन्होंने अनेक नगर, बहुतसे वन और अनगिनत तीर्थोंकी यात्रा कर ली थी। इसी समय साध्य नामक देवता उनसे आकर मिले और बोले—

साध्या देवा वयमेते महर्षे दृष्ट्वा भवन्तं न शक्नुमोऽनुमानम्।
श्रुतेन धीरो बुद्धिमांस्त्वं मतो नः काव्यां वाचं वक्तुमर्हस्युदाराम्॥

"हे महाभग, हमारा नाम साध्य है। आपने अनन्त तप किये हैं और समस्त संसारका परिदर्शन किया है, आप विद्या, बुद्धि और अनुभवके भण्डार हैं। अतः हमारी इच्छा है, कि आपसे कुछ कल्याणकारी उपदेश सुनें।"

एतत्कार्यममराः संश्रुतं मे धृतिः शमः सत्यधर्मानुवृत्तिः।
ग्रन्थिं विनीय हृदयस्य सर्वं प्रियाप्रिये चात्मसमं नयीत ॥

यह सुन आत्रेय महाराज कहने लगे,—"हे देव! यदि तुम ऐसी अभिलाषा करके आये हो, तो शान्त होकर स्थिरताके साथ मेरे उपदेश सुनोः—प्रत्येक व्यक्तिका धर्म है, कि वह हृदयकी सम्पूर्ण देह और आत्माभिमान रूप जड़ ग्रन्थियोंको काटकर इन्द्रियोंको जीते, सदा सत्य बोले और अपने समान सारे संसारिक मनुष्योंके सुख दुःखोंकी अनुभूति करे।

कटुसंभाषणके दोष।

आक्रुश्यमानो नाक्रोशंन्मन्युरेव तितिक्षतः।
आक्रोष्टारं निर्दहति सुकृतं चास्य विन्दति ॥

यदि किसी समझदारको कोई दुष्ट बुद्धि बुरी बातें कहे, तो समझदार अपने क्रोधको शान्तकर उनका उत्तर न दें। ऐसा होनेसे रुका हुआ क्रोध शत्रुकोही कष्ट देगा और तब तक उसके पीछे पड़ा रहेगा, कि जबतक शत्रु नष्ट न हो जायगा और क्षमा करने वालेका तो सोलहो आना कल्याण है।

नाक्रोशी स्यान्नावमानी परस्य मित्रद्रोही नोत नीचोपसेवी।
न चाभिमानी न च हीनवृत्तो रूक्षां वाचं रुषतीं वर्जयीत ॥

मनुष्य बुरी बात न कहे, किसीका निरादर न करे, नीचोंकी सेवा या खुशामद न करे, मित्रोंसे वैर न करे, अपकर्म न करे और कभी किसीसे रूखा संभाषण न करे।

मर्माण्यस्थीनि हृदयं तथासून् रूक्षा वाचो निर्दहन्तीह पुंसाम्।
तस्माद्वाच मुशतीमुग्ररूपां धर्मारामो नित्यशो वर्जयीत ॥

रूखी बात, कड़वी बात और कठोर बात मनुष्यके मर्म-हृदय,हड्डी और प्राणों तकको कष्ट देती है। फिर कटु संभाषण करनेसे वक्ताको भी तो कम हानि नहीं पहुंचती, उसका सारा धर्म नष्ट होजाता है। लोग निन्दा करते हैं और उसे संसारसे प्रतिष्ठा नहीं मिलती है।

अरुन्तुदं पुरुषं रूक्षवाचं वाक्कण्टकैर्वितुदन्तं मनुष्यान्।
विद्यादलक्ष्मीकतमं जनानां मुखे निबद्धां निरृतिं वै वहन्तम् ॥

दुःख देनेवाली रूखी वाणी मनुष्यके हृदयमें कांटेके समान पीड़ा देती है। रूखी वाणी, वक्ताके दरिद्र होने और दुःखोंमें पड़नेकी सूचना देती है।

परश्चेदेनमभिविध्येत बाणैर्भृशं सुतीक्ष्णैरनलार्कदीप्तैः।
सविध्यमानोऽप्यतिदह्यमानो विद्यात्कविः सुकृतं मे दधाति ॥

यदि दुष्ट लोग, सज्जनोंको आग और सूर्य्यकी किरणोंकी भांति ज्वलन्त विषमें बुझे छुरेके समान भयंकर वाक्य कहें, तो सज्जनोंको आवश्यक है, कि वे उन्हें चुपचाप सहलें ; उनका कुछ भी उत्तर न दें। ऐसा करनेसे दुष्टके पापोंकी वृद्धि और सुननेवालेके पुण्योंकी वृद्धि होगी।

यदि सन्तं सेवति यद्यसन्तं तपस्विनं यदि वा स्तेनमेव
वासो यथा रङ्गवशं प्रयाति तथा स तेषां वशमभ्युपैति ॥

सङ्गतिका प्रभाव सबके ऊपर पड़ता है। यदि आप सफेद वस्त्रको लाल, नीले, पीले, काले—जैसे भी रङ्गमें रङ्गेंगे उसपर वैसा ही रङ्ग चढ़ेगा। तदनुसार एक सरल व्यक्ति, महात्मा और चोर इनमेंसे जिसके भी पास बैठेगा, उसपर उसीका प्रभाव पड़ेगा।

अतिवादं न प्रवदेन्न वादयेद्यो नाहतः प्रतिहन्यान्न घातयेत्।
हन्तुं च यो नेच्छति पापकं वै तस्मै देवाः स्पृहयन्त्यागताय ॥

जो व्यक्ति किसीके साथ वाद-विवाद नहीं करता और न दूसरोंको वाद करनेका मौका देता है एवं मार खानेपर भी शान्त रहता है, तथा पापीके पापोंको क्षमा कर देता है, उसका आदर देवतातक करते हैं।

अव्याहृतं व्याहृताच्छ्रेय आहुः सत्यं वदेद्व्याहृतं तद्द्वितीयम्।
प्रियं वदेद्व्याहृतं तत्तृतीयं धर्मं वदेद्व्याहृतं तच्चतुर्थम् ॥

अधिक बोलनेसे मौन रहना अच्छा है; यदि आवश्यकता पड़नेपर बोला जाये, तो सदा सत्य बोलना चाहिये सत्य भी ऐसा हो, जो दूसरेको पीड़ा न दे अर्थात् प्रिय हो। प्रिय भी धर्मयुक्त होना आवश्यक है।

यादृशैः संनिविशते यादृशांश्चोपसेवते।
यादृगिच्छेच्च भवितुं तादृग्भवति पूरुषः ॥

जो मनुष्य जैसे स्वभाव, जैसी सङ्गति तथा जैसे आचरण

वाले साथीके साथ रहता है, निरन्तर उठता-बैठता है, उसपर उसीका प्रभाव पड़ता है और धीरे-धीरे वह अपने साथीका प्रतिरूप बन जाता है।

जितेन्द्रियके लक्षण।

यतो यतो निवर्तन्ते ततस्ततो विमुच्यते।
निवर्तनाद्धि सर्वतो न वेत्ति दुःखमण्वपि॥

सांसारिक विषयोंमें आसक्त किन्तु स्वयं मनुष्य जहांसे चाहता है, वहींसे अपनी, प्रारम्भिक अवस्थामें मनको लौटा लेता है। जब वह समस्त प्रवृत्तियोंसे निवृत्ति प्राप्त कर लेता है, तब उसका समस्त जीवन सुखमय हो जाता है।

उत्तम पुरुष।

न जीयते चानुजिगीषतेऽन्यान्न वैरकृच्चाप्रतिघातकश्च।
निन्दाप्रशंसासु समस्वभावो न शोचते हृष्यति नैव चायम्॥

जो सदा सुखसे रहते हैं, वे कभी न तो किसीको पीड़ा देना चाहते हैं, और न किसीसे वैर करते हैं। उन्हें निन्दा-स्तुति जनित प्रसन्नता और अप्रसन्नता भी नहीं होती, उनकी प्रकृति समदर्शिनी हो जाती है।

भावमिच्छति सर्वस्य नाभावे कुरुते मनः।
सत्यवादी मृदुर्दान्तो यः स उत्तमपूरुषः॥

एवं वह मनुष्य सबका कल्याण चाहता है, हानिकी स्वप्नमें भी कल्पना नहीं करता। सत्य बोलना, दीनोंको दान देकर सहायता देना, सबपर मधुर भाव रखना यह उसका पहला कर्त्तव्य

होता है। ऐसे व्यक्तिको नीतिकार लोग सर्वश्रेष्ठ कहते हैं।

मध्यम पुरुष।

नानर्थकं सान्त्वयति प्रतिज्ञाय ददाति च।
रन्ध्रं परस्य जानाति यः स मध्यमपुरुषः ॥

जो व्यक्ति बिना जरूरत नहीं बोले, प्रतिज्ञाको पूर्ण करे, शत्रुओंके छिद्रोंपर दृष्टि रखे, उसे मध्यम पुरुष कहते हैं।

नीचोंके लक्षण।

दुःशासनस्तूपहतोऽभिशस्तो नावर्तते मन्युवशात्कृतघ्नः।
न कस्य चिन्मित्रमथो दुरात्मा कलाश्चैता अधमस्येह पुंसः॥

जो व्यक्ति बुरे वाक्योंका व्यवहार किया करता है, सदा क्रोधका वशीभूत बना रहता है, जिसको शान्तिकी अपेक्षा लड़ाई झगड़ा ही पसन्द हो, एवं कृतघ्नता, मित्र द्रोह और दुष्टता ही जिसका स्वभाव है, उसे समझदार लोग नीच आदमी कहते हैं।

नीचातिनीच मनुष्योंके लक्षण।

न श्रद्धधाति कल्याणं परेभ्योह्यात्मशङ्कितः।
निराकरोति मित्राणि यो वै सोऽधमपूरुषः॥

जो व्यक्ति देवता, ब्राह्मण और पूज्य पुरुषोंमें श्रद्धाभाव नहीं रखता, जो आत्म विश्वास शून्य है और जो मित्रोंका भी निरादर करता है, वह मनुष्य अति नीच कहलाता है।

साधारण उपदेश।

उत्तमानेव सेवेत प्राप्तकाले तु मध्यमान्।
अधमांस्तु न सेवेत य इच्छेद्भूतिमात्मनः॥

प्रत्येक व्यक्तिको उचित है, कि वह सदा उत्तम कोटिके पुरुषोंकी ही सङ्गति करे एवं प्रयोजन सिद्ध करनेके लिये मध्यम पुरुषके पास भी चला जाये, किन्तु अपने कल्याणकी कामना रखनेवाला कोई भी व्यक्ति नीच और नीचातिनीच व्यक्तियोंसे प्रेम या सङ्गति न करे।

प्राप्नोति वैवित्तमसद्बलेन नित्योत्थानात्प्रज्ञया पौरुषेण।
न त्वेव सम्यग्लभते प्रशंसां न वृत्तमाप्नोति महाकुलानाम्॥

मनुष्य दुष्टोंकी सङ्गतिसे दुष्ट बन जाता है। दुष्ट बन जाने पर उसकी बुद्धि नष्ट और मन दूषित हो जाता है। अतएव उसकी उन्नति कभी नहीं होने पाती। अनुन्नत होनेसे उसकी कोई प्रशंसा नहीं करते और प्रशंसा न होनेसे उसका कुल गौरव नष्ट होता है।

उत्तम कुलोंके लक्षण।

तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि॥

जिस कुलके व्यक्ति तपस्वी, जितेन्द्रिय, वेदज्ञाता, विद्वान्, यज्ञकर्त्ता, भले गृहस्थ और अग्निहोत्र-सेवी होते हैं, वही उत्तम कुल समझा जाता है।

येषां हि वृत्तं व्यथते न योनिश्चित्तप्रसादेन चरन्ति धर्मम्।
ये कीर्तिमिच्छन्ति कुले विशिष्टां त्यक्तानृतास्तानि महाकुलानि॥

जिन कुलोंमें बुरे व्यक्ति नहीं होते, जिन कुलोंके व्यक्ति अपने स्वर्गगत पितरोंकी आत्माको सदा सन्तुष्ट रखनेको चेष्टा किया

करते हैं, जहाँ प्रसन्नताके साथ धर्मानुष्ठान होते हैं। जिन कुलोंके व्यक्ति कभी असत्य संभाषण नहीं करते, एवं सदा अपने वंशका गौरव बढ़ानेका प्रयत्न करते रहते हैं, वेही उत्तम कुल कहे जाते हैं।

उत्तम कुलोंके पतनका लक्षण।

अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति धर्मस्यातिक्रमेण च॥

ऐसे कुलोंमें उत्पन्न हुए जो व्यक्ति अपने पूर्व पुरुषोंके किये कामोंका अनुकरण नहीं करते, एवं नीच व्यक्तियों और अधम व्यक्तियोंकी कन्याओंसे अपना विवाह कर लेते हैं, साथ ही जिस कुलके व्यक्तियोंने वेदाध्ययन करना छोड़ दिया है, वे कुल उन्नत होकर भी नीच हो जाते हैं।

देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च।
कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च॥

जिन उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए व्यक्ति छल-कौशलसे निर्वाह करते, दीन व्यक्तियोंका सर्वस्व छीन लेते हैं, पूज्योंका निरादर करते हैं, वे उत्तम कहलानेवाले कुल भी ऐसे व्यक्तियोंके कर्मोंसे पतित होकर नीच कहलाने लगते हैं।

ब्राह्मणानां परिभवात्परिवादाच्च भारत।
कुलान्यकुलतां यान्ति न्यासापहरणेन च॥

जिस कुलके लोग ब्राह्मणोंका निरादर, बड़ोंका अपमान और अधर्मके साथ दूसरोंका धन ठग लेते हैं, वे कुल नीच कहलाने लगते हैं।

कूलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः॥

जिन कुलोंमें गाय-घोड़े आदि पशुओंकी प्रचुरता है, काफी धन-दौलत और मनुष्य भी यथेष्ट हैं, परन्तु उन कुलोंके लोगोंका चरित्र अति नीच है, उन कुलोंकी गणना उच्च कुलोंमें नहीं होती। अर्थात् गाय, पशु, ढोर, खूब, बढ़ी हुई खेती और अपरिमित धन इन सबसे कुछ अच्छे नहीं समझे जाते, वरन् कुलके चरित्रवान् व्यक्तियोंसे ही वंशका गौरव बढ़ता है।

वृत्ततस्त्वविहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि।
कुलसंख्यां च गच्छंति कर्षंति च महद्यशः॥

जिन कुलोंमें धनादिका अभाव है, परन्तु उनके मनुष्य चरित्रवान् हैं, वे ही कुल वास्तवमें प्रशंसा और उच्चताके अधिकारी हैं।

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमेतिच याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः॥

धन आने और जानेवाला अर्थात् गतिशील हैं, किन्तु चरित्र एक बार नष्ट हुआ, कि फिर कलङ्कका टीका लग ही जाता है। अतएव प्रत्येक मनुष्यको अपना वंश-गौरव बढ़ानेके लिये सदा चरित्रकी ही रक्षा करनी चाहिये, बहुत धन होनेपर भी बुरे चरित्रवाला मनुष्य हीन, और गरीब होकर भी अच्छे चरित्रवाला व्यक्ति उत्तम कहाता है।

मा नः कुले वैरकृत्कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः॥

प्रत्येक मनुष्यको इसी बातके लिये चेष्टा करनी चाहिये, कि हमारे कुलमें कोई भी व्यक्ति वैर करनेवाला न हो, हमारे राजा या मन्त्री आदि कोई भी दूसरोंका धन छीन लेनेवाले न हों, हमारे कुलमें एक भी ऐसा व्यक्ति न हो, जो कुल-देवता और कुल-पितरोंकी अवज्ञा करे।

यश्च नो ब्राह्मणान्हन्याद्यश्च नो ब्राह्मणान्द्विषेत्।
न नः स समितिं गच्छेद्यश्च नो निर्वपेत् कृषिम्॥

हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिये, जिससे हमारे यहाँका कोई भी आदमी ब्राह्मणोंसे द्वेष न करे, ग़रीबोंको न मारे, या अपने कर्त्तव्यसे विपरीत काम न करे।

साधारण उपदेश।

तृणानि भूमिरुदकं वाक्चतुर्थी च सूनृता।
सतामेतानि गेहेषु नोच्छिद्यन्तो कदाचन॥

सज्जनोंके घरोंमें, धान्य, जल, भूमि, सत्यता और मधुरवाणीका कभी अभाव नहीं होता। अर्थात् सज्जनगण, अपने यहां आये हुए व्यक्तियोंका सूखे-मोटे भोजन, शीतल जल और बैठनेके लिये भूमि तथा सत्यता मिली मधुरवाणी द्वारा सत्कार करनेसे बाज नहीं आते।

श्रद्धया परया राजन्नुपनीतानि सत्कृतम्
प्रवृत्तानि महाप्राज्ञ धर्मिणां पुण्यकर्मिणाम्॥

यदि सज्जनोंके पास और कुछ भी न हो, तो वे अपने अतिथिको श्रद्धा और भक्ति द्वारा ही प्रसन्न कर लेते हैं। धर्मात्मा

लोगों और सत्कुटुम्बियोंका यही लक्षण होता है। धर्म-प्राण महात्मा परम श्रद्धा और यत्नसे स्वागत और सत्कारकी चारों वस्तुओंको अपने घरमें रखते हैं।

सूक्ष्मोपि भारं नृपते स्यन्दनो वै शक्तो बोढुं न तथान्ये महीजाः।
एवं युक्ता भारसहा भवन्ति महाकुलीना न तथान्ये मनुष्याः॥

जिस प्रकार भरी रथको घोड़ेके सिवा और कोई नहीं खींच सकता, उसी प्रकार सद्बुद्धिवाले व्यक्ति ही सच्चरित्रताके समस्त साधनोंको कर सकते हैं। साधारण श्रेणीके व्यक्तियोंमें वैसी क्षमता नहीं होती।

न तन्मित्रं यस्य कोपाद्बिभेति यद्वा मित्रं शङ्कितेनोपचर्यम्।
यस्मिन्मित्रे पितरीवाश्वसीत तद्वै मित्रं संगतानीतराणि॥

समझदार लोग उस व्यक्तिको मित्र बनानेका उपदेश नहीं करते, जिसका क्रोध अत्यन्त भयानक हो अथवा जिसके कार्य्य सन्देह पूर्ण हों। वरन् मित्र बनाने योग्य वही व्यक्ति हैं, जो हमारे कामोंपर उसी प्रकार विश्वास करे, जिस प्रकार पिता पुत्रके कामोंपर करता है; और जितने मनुष्य हैं, वे सब सम्बन्धी मात्र कहे जाते हैं।

यः कश्चिदप्यसम्बद्धो मित्रभावेन वर्तते।
स एव बन्धुस्तन्मित्रं सा गतिस्तत्परायणम्॥

जो मनुष्य बिना सम्बन्ध और बिना किसी प्रकारके स्वार्थके मित्रता करे, समय आनेपर सच्चे हितेच्छुक पिताकी भांति आपत्तियोंसे रक्षा करे, मित्र बनाने, बन्धु कहने और सङ्गति करने योग्य वही मनुष्य है।

चलचित्तस्य वै पुंसो वृद्धाननुपसेवतः ।
पारिप्लवमतेर्नित्यमध्रु वो मित्रसंग्रहः ॥

जिस मनुष्यका चित्त चञ्चल है, जो बड़ोंकी सेवा नहीं करता, जिसकी बुद्धि स्थिर नहीं है, उससे कभी भी मित्रता न करनी चाहिये ।

चलचित्तमनात्मानमिन्द्रियाणां वशानुगम् ।
अर्थाः समभिवर्तन्ते हंसाः शुष्कं सरो यथा ॥

जिसका मन, चित्त और शरीर अनस्थिर है, जो सदा इन्द्रियोंके वशमें रहता है । उस मनुष्यको धर्म और अर्थ इस प्रकार छोड़ देते हैं, जिस प्रकार जलशून्य तालावको हंस छोड़ देते हैं ।

अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं पारिप्लवं यथा ॥

जिसका मन आकाशके बादल और जलकी नावकी भांति जड़ हो अर्थात् तनिकसी आपत्तिरूप वायुका झोंका या जलके झकोरेसे वह जाये, जो विना कारण ही क्रोध करने लगे और जरासी बातपर प्रसन्न हो जाये. वह मूर्ख और दुष्ट है ।

सत्कृताश्च कृतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥

जो अत्यन्त आदर पाकर भी मित्रताका काम न करे, अर्थात् जो एक व्यक्तिसे उपकार पाकर भी उसका प्रत्युपकार करनेका प्रयत्न न करे एवं सदा कृतघ्नताके काम करे, उसकी मरनेपर सद्गति नहीं होती ।

अर्चयेदेव मित्राणि सति वाऽसति वा धने।
नानर्थयन्प्रजानाति मित्राणां सारफल्गुताम् ॥

प्रत्येक आदमीका यह कर्त्तव्य है, कि वह अपने धनी या दरिद्र चाहे जैसा मित्र हो, उसके साथ सदा अच्छा बर्त्ताव करे। क्योंकि यदि ऐसा न कर वह धनी मित्रसे प्रेम और निर्धन मित्रसे उपेक्षा करेगा, तो लोग उसे स्वार्थी समझेंगे।

सन्तापाद्भ्रश्यते रूपं संतापाद्भ्रश्यते बलम्।
संतापाद्भ्रश्यते ज्ञानं संतापाद्व्याधिमृच्छति ॥

संतापसे रूप नष्ट हो जाता है, चिन्ताओंसे बल नष्ट होता है, मित्रके विछोहसे ज्ञान नष्ट होता है और शोक करनेसे अनेक प्रकारकी पीड़ाएं सताने लगती हैं।

अनवाप्यं च शोकेन शरीरं चोपतप्यते।
अमित्राश्च प्रहृष्यंति मास्म शोके मनः कृथाः ॥

चिंताओं द्वारा शरीर जलता है, और शत्रु प्रसन्न होते हैं, अतएव चिंताओंके वशमें कभी न रहना चाहिये।

पुनर्नरो म्रियते जायते च पुनर्नरो हीयते वर्धते च।
पुनर्नरो याचति याच्यते च पुनर्नरः शोचति शोच्यते च ॥

मनुष्य बारम्बार उत्पन्न होता है, बारम्बार मरता है, बारम्बार मनुष्यकी उन्नति होती है और बारम्बार अवनति होती है। यहां तक कि बाज वक्त उसे भीख मांग कर पेट भरना पड़ता है। वह कभी स्वयं संताप पाता है और कभी दूसरोंको संताप देता है।

सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च।

पर्यायशः सर्वमेते स्पृशंति तस्माद्धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ॥

सुख और दुःख, लाभ और हानि, तथा मरना और जीना ये सब संसारके विवर्त्तन हैं। इनमें प्रत्येक मनुष्यको अवश्य ही पड़ना पड़ता है। किन्तु बहादुरी उसी मनुष्यकी है, जो उनके प्रभावसे प्रभावित हो आत्म विस्मृत नहीं होता।

चलानि हीनानि षडिन्द्रियाणि तेषां यद्यद्वर्धते यत्र यत्र।

ततस्ततः स्रवते बुद्धिरस्य-छिद्रोदकुम्भादिव नित्यमम्भः ॥

लेकिन भय इन इन्द्रियोंसे हैं। इन्द्रियों और मनकी गति अति चञ्चल है एवं जहाँपर वह चाञ्चलता सीमा पार कर जाती है, वहीं मनुष्य हतबुद्धि हो जाता है और इस प्रकार नष्ट होने लगता है, जिस प्रकार छेदवाले घड़ेका पानी।

नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात्।

नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छांतिं पश्यामि तेऽनघ ॥

विद्या, तप, इन्द्रियोंको जीतना, और लोभ न करना ये ही ऐसे साधन हैं जिनसे मनुष्यको शान्ति प्राप्ति होती है। अन्यथा संसारमें ऐसा कोई भी साधन नहीं, जिससे शाँति प्राप्त की जासके।

बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत्।

गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्तिं योगेन विन्दति ॥

विद्यासे भयका नाश होता है, तपसे परमपद मिलता है। बड़ोंकी सेवा करनेसे ज्ञान होता है और योगसे शान्ति प्राप्त होती है।

अनाश्रिता दानपुण्यं वेदपुण्यमनाश्रिताः ।
रागद्वेषविनिर्मुक्ता विचरन्तीह मोक्षिणः ॥

जो लोग दान-पुण्यके फल और वेद-वर्णित स्वर्गके सुखोंकी कामनाको छोड़, काम और द्वेषका परित्याग कर संसारका हित-साधन करते हैं, वे मुक्त पुरुष अन्तमें अवश्य ही मोक्षरूप शान्ति-को प्राप्त करते हैं ।

स्वाधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ॥

अध्ययन, युद्ध, तपस्या और शुभकर्म—इन चारों बातोंका सुपरिणाम अन्तमें ही फलता है ।

जातिद्वेषका परिणाम ।

स्वस्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवंति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ॥

जातिसे त्यागे हुए मनुष्योंको कभी शांति नहीं मिलती, वे तो कोमल शय्यासे ही शांत होते हैं, न बहुतसी तारीफोंसे प्रसन्न होते और न अनेक स्त्रियोंसे घिरे रहकर सुखी होते हैं ।

न वै भिन्ना जातु चरंति धर्मं न वै सुखं प्राप्नुवंतीह भिन्ना ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवंति न वै भिन्नाः प्रशमं रोचयंति ॥

जातिसे त्यागे हुए मनुष्योंसे न तो कोई धर्मानुकूल अनुष्ठान ही हो सकता है, न वे किसी प्रकारका सुख भोगते हैं, आदर पाते हैं और न उन्हें कभी शांति ही प्राप्त होती है ।

न वै तेषां स्वदतो पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।
भिन्नानां वै मनुजेन्द्र परायणं न विद्यते किंचिदन्यद्विनाशात् ॥

जाति--द्रोहियोंके यहाँ अभ्यागत भोजन नहीं करते । योग और क्षेम उनके लिये सुखोंकी कल्पना नहीं करते । एवं सिवा विनाशके उनका दूसरा परिणाम नहीं होता ।

संपन्नं गोषु सम्भाव्यं सम्भाव्यं ब्राह्मणे तपः ।
सम्भाव्यं चापलं स्त्रीषु सम्भाव्यं ज्ञातितो भयम् ॥

गायोंमें दूध ही धन है, ब्राह्मणोंमें तप ही धन है, स्त्रियोंकी चाञ्चलता ही धन है एवं मनुष्योंमें जाति प्रेम ही धन है ।

धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलंति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ॥

जाति मनुष्योंके समूहका नाम है । जिस प्रकार काष्ठके टुकड़े अलग-अलग जलनेसे धुआँ देते हैं और एकत्र जलनेसे विपुल प्रकाश करते हैं, उसी प्रकार जातिकी भी समूहसे शोभा है ।

ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृन्दादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ॥

जो दुरात्मा व्यक्ति, ब्राह्मण, स्त्री और गायोंसे अपना पराक्रम दिखाता हैं, उसका इसी प्रकार पतन हो जाता है, जिस प्रकार पके हुए फल लतासे ज़मीनपर गिर पड़ते हैं ।

महानप्येकजो वृक्षो बलवान्सुप्रतिष्ठितः ।
प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ॥

जैसे अनेक शाखाओंसे युक्त, फल-फूल भरा वृक्ष अकेले

स्थानपर उगा होनेपर प्रवल वायुको न सहकर गिर पड़ता हैं, उसी प्रकार जातिसे अलग रहनेवाला बलवान आदमी भी अपने शत्रुओं द्वारा गिरा दिया जाता हैं।

अथ ये सहिता वृक्षाः सङ्घशः सुप्रतिष्ठिताः।
ते हि शीघ्रतमान्वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात्॥

जिस वनमें बहुतसे वृक्ष पास पास खड़े होते हैं, वहाँ अत्यन्त वायु चलनेसे भी वृक्ष नहीं टूटते। क्योंकि वहाँ एकको दूसरेका आश्रय होता है। यही हाल मानव—समुदायका है, जहाँपर भी एक जातिके मनुष्य प्रेमभावसे रहेंगे, वहींपर वे सुरक्षित रूपसे रह सकेंगे।

एवं मनुष्यमाप्यैकं गुणैरपि समन्वितम्।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुद्रुममिवैकजम्॥

ऊपर कहा जा चुका है, कि वनमें अकेला रहनेवाला वृक्ष चाहे जितनी शाखाओं और फल-फूलोंसे क्यों न लदा हो, पर आँधी उसे अनायास ढा देती है, यही हाल उस मनुष्यका है, जो अनेक गुण होते हुए भी जातिवालोंसे द्वेष कर अकेला रहता है एवं समयानुसार शत्रुओंद्वारा गिरा दिया जाता है।

अन्योन्यसमुपष्टम्भादन्योन्यापाश्रयेण च।
ज्ञातयः संप्रवर्धन्ते सरसोवोत्पलान्युत॥

जैसे पास पास होनेसे तालावके कमलोंकी वृद्धि होती है, वैसे ही समीपमें रहनेवाले जाति बान्धवोंके प्रेमकी वृद्धि होती है एवं प्रेम-वृद्धि होनेसे जातिका अभ्युदय होता है।

किसीका बुरा न करे ?

अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।
येषां चान्नानि भुञ्जीत ये च स्युः शरणागताः ॥

प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि वह विद्वान् ब्राह्मण, अपनी जाति, अबोध बालक, अबला स्त्री और जिसका कभी अन्न खाया हो तथा जो शरणमें आ गया हो, इन सबको कभी न मारे ।

न मनुष्ये गुणः कश्चिद्राजन्सधनतामृते ।
अनातुरत्वाद्भद्रं ते मृतकल्पा हि रोगिणः ॥

मनुष्योंका सच्चा बल उनकी सामर्थ्य या आत्मिक-बल और स्वास्थ्य है, जिसमें यह बल नहीं, वह मुर्देके बराबर है ।

अव्याधिजं कटुकं शीर्षरोगिरापानुबन्धं परुषं तीक्ष्णमुष्णम् ।
सतां पेयं यन्न पिबन्त्यसन्तो मन्युं महाराज पिब प्रशाम्य ॥

जो लोग नीरोग और सामर्थ्यवान् हैं वे पापकी वृद्धि करनेवाले तेजका दमन करें, सबको सन्ताप देनेवाले क्रोधको पी जायें ।

रोगार्दिता न फलान्याद्रियन्ते न वै लभन्ते विषयेषु तत्वम् ।
दुःखोपेता रोगिणो नित्यमेव न बुध्यन्ते धनभोगान्न सौख्यम् ॥

जो लोग रोगी हैं, वे कभी अपने मनोरथकी प्राप्ति नहीं कर सकते, उनका कहीं भी आदर नहीं होता । रोगी हर समय दुःखी ही रहते हैं । सुखोंकी अनुभूति और मनोंका अनुभव उन्हें किसी समय भी नहीं होने पाता ।

न तद्बलं यन्मृदुना विरुध्यते सूक्ष्मो धर्मस्तरसा सेवितव्यः ।
प्रध्वंसिनी क्रूरसमाहिता श्रीर्मृदुप्रौढा गच्छति पुत्रपौत्रान् ॥

वह बल, बल नहीं कहा जाता, जो कमजोरोंसे विरोध कराता है। बलका प्रभाव हठपूर्वक धर्म-पालनमें देखना चाहिये। पापसे कमाया धन धुएँकी भाँति उड़ जाता है और न्यायसे कमाया हुआ धन पुत्र-पौत्रोंतक कुटुम्बकी रक्षा करता हुआ रहता है।

पञ्चम परिच्छेद ।

संसारमें कितने मूर्ख हैं ?

सप्तदशेमान् राजेन्द्र मनुः स्वायंभुवोऽब्रवीत् ।
वैचित्रवीर्यपुरुषानाकाशं मुष्टिभिर्घ्नतः ॥
दानवेन्द्रस्य च धनुरनाम्यं नमतोऽब्रवीत् ।
अथो मरीचिनः पादानग्राह्यान् गृह्णतस्तथा ॥

यश्चाशिष्यं शास्ति वै यश्च तुष्येद्यश्चातिवेलं भजते द्विषन्तम् ।
स्त्रियश्च यो रक्षति भद्रमश्नुते यश्चायाच्यं याचते कत्थते वा ॥
यश्चाभिजातः प्रकरोत्यकार्यं यश्चाबलो बलिना नित्यवैरी ।
अश्रद्दधानाय च यो ब्रवीति यश्चाकाम्यं कामयते नरेन्द्र ॥

ब र करे, जो छल और कपटको अपना प्रधान साधन समझे एवं जो देशकालका कुछ ख़याल नकर हरएक कामको कर डाले, तथा

वध्वाऽवहासं श्वशुरो मन्यते यो वध्वाऽवसन्नभयो मानकामः।
परक्षेत्रे निर्वपति यश्च बीजं स्त्रियं च यः परिवदतेऽतिवेलम्॥
यश्चापि लब्ध्वा न स्मरामीतिवादी दत्वा च यः कत्थति याच्यमानः
यश्चासतः सत्वमुपानयीत एतान्नयन्ति निरयं पाशहस्ताः॥

मनु महाराजने सत्रह प्रकारके मूर्खोंका वर्णन किया है। पहला–जो घूंसेसे आकाशको फाड़ना चाहें, दूसरा—जो वर्षान्तमें निकलनेवाले इन्द्र धनुषको पाने और उसे चढ़ानेकी चेष्टा करे, तीसरा–जो अप्राप्य सूर्य्य और चन्द्रमाकी किरणोंको पकड़नेके लिये दौड़े, चौथा–जो दुष्टको शिक्षा दे, पाँचवाँ–जो थोड़ेसे लाभके लिये प्रसन्न हो, छठां—जो तनिक सी हानिसे मुर्दा और थोड़ेसे लाभसे फूल उठे, सातवाँ–जो चिरकाल तक शत्रुओंकी सेवा करे, आठवाँ—जो स्त्रियोंका गुलाम बनकर भी कल्याण कामना करे, नवाँ–जो न माँगने योग्य वस्तुको माँगे और जो अनिर्वचनीय वाक्योंको कहे। दशवाँ –जो थोड़ासा काम कर ढेरों अपनी प्रशंसा करे, ग्यारहवाँ—जो कुलीन होकर बुरा काम करे, बारहवाँ—निर्बल होकर बलवान्से वैर करे, तेरहवाँ–जो श्रद्धा और भक्ति-हीनभावसे धर्म-कथा कहे, चौदहवाँ–जो अकरणीय व्यक्तियोंके कार्य्यको करे, पन्द्रहवाँ—जो पुत्र और बंधुओंसे उनके पदानुसार व्यवहार नहीं करता; सोलहवाँ—जो दूसरेके खेतमें बीज बोता हो, स्त्री विवादी, और ऋण लेकर भूल जाने वाला तथा सत्रहवाँ-जो भीख माँगनेवालोंसे अपनी प्रशंसा करता है। ये सत्रहों व्यक्ति मूर्ख होनेके साथ-साथ पापी भी कहे जाते

हैं, और इन्हें मरनेके बाद नरककी असह्य यन्त्रणायें भोगनी पड़ती हैं।

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य स्तस्मिंस्तथा वर्त्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारो मायया वर्त्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेतः॥

मनुष्योंको संसारमें रहकर बड़ी सतर्कताके साथ रहना चाहिये एवं जैसे मनुष्यसे पाला पड़े, उससे वैसा ही बर्त्ताव करना चाहिये। जैसे—शठके साथ शठता का और साधुके साथ साधुताका।

जरा रूपं हरति हि धैर्यमाशा मृत्युः प्राणांधर्मचार्यामसूया।
कामोह्रियं वृत्तमनार्यसेवा क्रोधः श्रियं सर्वमेवाभिमानः॥

बुढ़ापा रूपको, आशा धैर्य्यको, मृत्यु प्राणोंको, डाह धर्मको, काम लज्जाको, दुष्टोंकी सङ्गति सच्चरित्रताको, क्रोध लक्ष्मीको और अभिमान सारी चीजोंको नष्ट कर देता है।

आयु-ह्रास या कम उम्र होनेके कारण।

अतिमानोऽतिवादश्च तथाऽत्यागो नराधिप।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट्॥
एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम्।
एतानि मानवान्घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते॥

अत्यन्त घमण्ड, अत्यन्त विवाद, कंजूसी, क्रोध, स्वार्थीपन, मित्रद्रोह—ये मनुष्यको नष्ट करनेवाले मानो तीक्ष्ण शस्त्र हैं। इन्हींका सेवन करनेसे मनुष्य अकाल हीमें कालका शिकार हो जाता है।

साधारण उपदेश ।

विश्वस्तस्यैति यो दारान् यश्चापि गुरुतल्पगः ।
वृषलीपतिर्द्विजो यश्च पानपश्चैव भारत ॥
आदेशकृद्वृत्तिहन्ता द्विजानां प्रेषकश्च यः ।
शरणागतहा चैव सर्वे ब्रह्महणः समाः ॥
एतैः समेत्य कर्तव्यं प्रायश्चित्तमिति श्रुतिः ॥

जो व्यक्ति विश्वासी और बड़ोंकी स्त्रीके साथ अपनी पाप-वासना चरितार्थ करता है, जो ब्राह्मण होकर वेश्यागमन करता है, जो शराब पीता है, जो ब्राह्मणोंकी वृत्तिका नाश करता है, जो निरीह ब्राह्मणोंसे सेवा कराता है, ये सब पापी और हत्यारे कहे जाते हैं। अतः इन लोगोंको चाहिये, कि वे इन पापोंको भूलसे करनेपर भी यथायोग्य प्रायश्चित्त करें।

गृहीतवाक्यो नयविद्वदान्य, शेषान्नभोक्ता ह्यविहिंसकश्च ।
नानर्थकृत्याकुलिकः कृतज्ञः सत्यो मृदुः स्वर्गमुपैति विद्वान् ॥

जो विद्वानोंके वचनोंका पालन करे, नीतिका अध्ययन कर उसका ज्ञान प्राप्त करे, विषय और उनके परिणामोंकी अभिज्ञता रखता हो, समस्त कुटुम्बियोंको पहले खिलाकर बादको स्वयं खाता हो, किसीसे द्वेष न करता हो, पापोंसे डरे, उपकारकका कृतज्ञ रहे और सत्यवादके साथ सबसे नरमीसे बोले, वह विद्वान् वास्तवमें स्वर्गका अधिकारी होता है।

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ॥

संसारमें प्यारी और दिलखुश करनेवाली बातोंके सुननेवाले बहुत पाये जाते हैं, किन्तु सत्य और अप्रिय होनेके कारण हितकारक बातोंके सुनने तथा कहनेवालोंकी संसारमें एकदम कमी है।

यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान्॥

जो धनीमानी व्यक्तियोंके क्रोध और प्रेमकी कुछ परवा न कर सदा सत्य और हितकारक बातें—चाहें वे बातें कड़वी क्यों न हों—कहता है, सच्चा हितैषी वही है।

त्यजेत्कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत्॥

कुटुम्बके हितके लिये एक खराब मनुष्यको छोड़ दे, गांवके कल्याणके लिये एक पापी कुटुम्बको छोड़ दे, नगरके भलेके लिये एक खराब गांवको छोड़ दे और आत्म-कल्याणके लिये संसारको छोड़ दे। बस, यही समझदार आदमीका कर्त्तव्य और परम धर्म है।

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान्रक्षेद्धनैरपि।
आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि॥

आपत्तिके लिये धनकी रक्षा करे, और धनके साथ स्त्रियोंकी रक्षा करे एवं स्त्री और धनकी रक्षाके साथ साथ अपनी भी सदा रक्षा करता रहे। यही विवेकी मनुष्यका कर्त्तव्य है।

द्यूतमेतत्पुराकल्पे दृष्टं वैरकरं नृणाम्।

तस्माद्द्यूतं न सेवेत हास्यार्थमपि बुद्धिमान् ॥

जूआ सदासे वैर और विरोधका कारण रहा है, इसलिये प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है, कि वह चित्त-विनोदके लिये भी कभी जूएको न खेले।

सुतीक्ष्णाःसुलभाः वाक्याः सर्वेषां नाधिरोचते।
तदौषधं पथ्यमिवातुरस्य क्वापि रोचते ॥

अच्छे वाक्य हरएकको अच्छे नहीं लगते। जैसे कड़वी औषधि रोगीको अच्छी नहीं लगती। किन्तु परिणाम दोनोंका अच्छा होता है।

स्वामीका कर्त्तव्य।

काकैरिमांश्चित्रबर्हान्मयूरा पराजयेथाः पाण्डवान्धार्तराष्ट्रैः।
हित्वा सिंहान्क्रोष्टुकान्गूहमानः प्राप्ते कालेशोचिता त्वं नरेन्द्रः॥

अच्छे आदमियोंमें सब प्रकारका अजेय सामर्थ्य होता है। उनको ऐरे-गैरे आदमी पराजित नहीं कर सकते। क्योंकि आज तक कौवोंने कभी हंसोंको नहीं हराया। अतएव जो समझदार हैं, वे सिंहोंको मरवाकर सियारोंको नहीं पालते।

यस्तात न क्रुध्यति सार्वकाल भृत्यस्य भक्तस्य हिते रतस्य।
तस्मिन्भृत्या भर्तरि विश्वसन्ति न चैनमापत्सु परित्यजन्ति ॥

जो लोग अपने हितैषी दासोंपर कभी भूलकर भी क्रोध नहीं करते, उनके सेवक सदा उनकी आपत्तियोंमें सिर कटानेके लिये तयार रहते हैं।

न भृत्यानां वृत्तिसंरोधनेन राज्यं धनं सञ्जिघृक्षेदपूर्वम्।

त्यजन्ति ह्येनं वञ्चिता वै विरुद्धाःस्निग्धाह्यमात्याः परिहीनभोगाः ॥

जो लोग अपने नौकरोंको यथेष्ट सन्तुष्ट न कर भारी भारी काम सौंप देते हैं, उनका अति शीघ्र नाश होता है, जैसे वज़ीर लोग कंजूस राजाके राज्यका नाश कर देते है।

कृत्यानि पूर्वं परिसंख्याय सर्वाण्यायव्यये चानुरूपां च वृत्तिम्।
संगृह्णीयादनुरूपान्सहायान्सहायसाध्यानि हि दुष्कराणि ॥

धनी और मानी लोगोंका कर्त्तव्य है, कि वे सब कामोंको देखकर नौकरोंकी वृत्ति या वेतन निश्चित करें, फिर समयपर सहायता देने योग्य मनुष्योंसे सहायता लें, क्योंकि कठिन कार्य्य बिना सहायकोंकी सहायताके सिद्ध नहीं होते।

अभिप्राय यो विदित्वा तु भर्तुः सर्वाणि कार्याणि करोत्यतन्द्री।
वक्ता हितानामनुरक्त आर्यः शक्तिज्ञ आत्मेव हि सोऽनुकम्प्यः ॥

जो फुर्तीला नौकर स्वामीके मनके अभिप्रायको जानकर प्रत्येक काम करता है, सदा स्वामीके हितकी ही बात कहता है, हमेशा अच्छे काम करता है, स्वामीके शक्तिका ज्ञान रखता है, उसपर स्वामीके कुटुम्बीकी भांति प्रेम करना चाहिये।

वाक्यं तु यो नाद्रियतेऽनुशिष्टः प्रत्याह यश्चापि नियुज्यमानः।
प्रज्ञाभिमानी प्रतिकूलवादी त्याज्यः स तादृक् त्वरयैव भृत्यः ॥

जो सेवक स्वमीके वचनोंका निरादर करता हो, सदा तेजीके साथ बोलता हो, बताये हुए कामको करनेसे आनाकानी करे, और सदा अपनी बुद्धिके अभिमानमें भूला रहता, हो, उस सेवकको—स्वामीका कर्त्तव्य है, कि तत्काल निकाल दे।

दूतके लक्षण ।

अस्तब्धमक्लीवमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ॥

जो व्यक्ति नम्र हो, पुरुषार्थी हो, जिसको किसी तरहका अभिमान न हो, जो शीघ्र काम करता हो, जो शत्रुसे अधिक बलवान् हो, जो नीरोगी हो, जिसके वाक्य कोमल हों, ऐसे व्यक्तिको ही दूत या सन्देश देनेवालेका काम सौंपना चाहिये। शास्त्रोंमें दूतके ये ही लक्षण लिखे हैं।

दूतके कर्त्तव्य ।

न विश्वासाज्जातु परस्य गेहे गच्छेन्नरश्चेतयानो विकाले ।
न चत्वरे निशि तिष्ठेन्निगूढो न राजकाम्यं योषितं प्रार्थयीत ॥

बुद्धिमान् दूतका कर्त्तव्य है, कि वह सन्ध्याके समय शत्रुके यहां न जाये, रातको सदर सड़कपर न खड़ा हो, और सदा राज भवनसे अलग रहे।

न निह्नवं मन्त्रगतस्य गच्छेत्संसृष्टमन्त्रस्य कुसंगतस्य ।
न च ब्रूयान्नाश्वसिमि त्वयीति सकारणं व्यपदेशं तु कुर्यात् ॥

साथ ही वह न तो अपने स्वामीकी सम्मतिके विरुद्ध कोई बात कहे, और न ऐसेके पास जाये, जो दुष्टोंकी संगति करता हैं या उपद्रवियोंकी सम्मतिके अनुसार कार्य्य करता है। जिसके पास भेजा जाये, उससे कभी यह न कहे, कि हम आपका विश्वास नहीं करते एवं बहाना कर उसके कामको न टाले।

साधारण उपदेश ।

घृणी राजा पुंश्चली राजभृत्यः पुत्रो भ्राता विधवा बालपुत्रा ।
सेनाजीवा चोद्धृतभूतिरेव व्यवहारेषु वर्जनीयाः स्युरेते ॥

प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है, कि वह बुरे राजा, कुलटा स्त्री, सिपाही, पुत्र, भाई, विधवा और पुत्रवती स्त्री इनसे पारस्परिक व्यवहार न करे, साथ ही सेनाके नौकर और अधिकार छिने व्यक्तिसे भी लेन-देन करना मानो अपनेको खतरेमें डालना है।

गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ॥

बल, रूप, मधुर स्वर और वाणीकी पटुता एवं पवित्र वस्तुओंसे संस्पर्श, पवित्र सुगन्धियोंको सुंघना, शोभा सुकुमारता और पतिव्रता-स्त्रियाँ ये साधन महात्माओंको ही प्राप्त होते हैं।

गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ॥

मिताहारी या थोड़ा खानेवाले मनुष्यको कभी रोग नहीं होता। उसकी आयु बढ़ती और सुख अपरिसीम होते हैं। उसकी सन्तान बलवती और चिर-जीवी होती है। यही कारण है, जो समझदार लोग मिताहारीकी प्रशंसा करते हैं और बहु-भक्षककी निन्दा करते हैं।

अकर्मशीलं च महाशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेषमेतान्गृहे न प्रतिवासयेत ॥

जो निरन्तर निष्कर्मा बना रहे, जो बहुत खाये, जो लोगोंसे

बैर करे, जो छल और कपटको अपना प्रधान साधन समझे एवं जो देशकालका कुछ ख़याल न कर हरएक कामको कर डाले, तथा जो अमङ्गल वेशी हो—इन लोगोंको राजा अपने देशसे निकाल दे।

कदर्यमाक्रोशकम श्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानियम्।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कृतघ्नमेतान्भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ॥

जो कभी किसीको दान न करे, सदा गालियोंसे खबर लेता हो, विद्यासे उपेक्षा रखता हो, नगर छोड़ वनमें रहे, एवं जो धूर्त हो और सबको एक ही लकड़ीसे हाँके, जो निर्दय हो, द्वेषी हो तथा जो कृतघ्न हो—ऐसे मनुष्योंसे अत्यन्त दुःख पड़नेपर भी किसी प्रकारकी याञ्चा न करना चाहिये।

संक्लिष्टकर्माणमतिप्रमादं नित्यानृतं चादृढभक्तिकं च।
विसृष्टरागं पटुमानिनं चाप्येतान्न सेवेत नराधमान्षट् ॥

जो सदा बुरे काम करे, जो हमेशा-गलतियाँ करे, जो सदा झूठ बोले, जिसका प्रेम अनस्थिर हो, जो निष्ठुर हो, और जो अपनेको बड़ा भारी चालाक लगाता हो, इन मनुष्योंसे कभी मित्रता न करनी चाहिये।

सहायबन्धना ह्यर्थाः सहायाश्चार्थबन्धनाः।
अन्योन्यबन्धनावेतौ विनान्योन्यं न सिध्यतः ॥

धनसे सहायक मिलते हैं, सहायकोंसे धन मिलता है, अर्थात् ये दोनों ऐसा सम्बन्ध रखते हैं, कि एकके बिना दूसरेकी सिद्धि नहीं हो सकती।

उत्पाद्य पुत्राननृणांश्च कृत्वा वृत्तिं च तेभ्योऽनुविधाय कांचित्।

स्थाने कुमारीः प्रतिपाद्य सर्वा अरण्यसंस्थोऽथ मुनिर्बुभूषेत् ॥

मनुष्योंको उचित है, कि वे गृहस्थ-धर्म पालनपूर्वक अपने पुत्रोंको विद्या पढ़ायें, फिर उन्हें गुरु आदिके ऋणोंसे मुक्त कराकर किसी सुन्दर वृत्तिमें लगा दें। पुत्रियोंको वे गृहस्थोके सारे काम सिखा और विद्या आदिसे सम्पन्न कर योग्य-वरके हाथमें सौंप दें। अनन्तर वनमें जाकर ईश्वरका अराधन करें।

हितं यत्सर्वभूतानामानश्च सुखावहम्।
तत्कुर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ॥

समस्त मनुष्योंका यह प्रधान कर्त्तव्य है, कि वे सदा ऐसे काम करें, जिनसे अपने साथ सारे संसारका भी कल्याण हो क्योंकि ऐसा करनेसे ही सारे प्रयोजन-सिद्ध हो जाते हैं।

वृद्धिः प्रभावस्तेजश्च सत्वमुत्थानमेव च ॥
व्यवसायश्च यस्य स्यात्तस्यावृत्तिभयं कुतः।

जिस मनुष्यमें अपनी उन्नति करनेकी इच्छा, तेज, शक्ति, साहस, धर्म, उद्योग और काम करनेका दृढ़ निश्चय हो, उसे दरिद्रता कभी नहीं सता सकती।

अर्थसिद्धिं परामिच्छन् धर्ममेवादितश्चरेत्।
न हि धर्मादपैत्यर्थः स्वर्गलोकादिवामृतम् ॥

जिस मनुष्यका आत्मा पापोंसे विरत होकर धर्मके कार्य्योंमें जा लगा है, वही संसार और आत्म-ज्ञानकी महत्ताको समझता है।

यस्यात्मा विरतः पापात् कल्याणे च निवेशितः।

तेन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ॥

मनुष्यको उचित है, कि वह यदि कल्याणकी इच्छा करे, तो पहले धर्म करे। जैसे स्वर्गमें अमृतका नाश नहीं होता, उसी प्रकार धर्म करनेसे कभी प्रयोजनका नाश नहीं होता ॥

यो धर्ममर्थं कामं च यथाकालं निषेवते ।
धर्मार्थकामसंयोगं सोऽमुत्रेह च विन्दति ॥

जो मनुष्य समयके अनुसार धर्म, अर्थ और कामात्मक कार्य्योंको करता है। वह इन तीनोंके प्रभावसे मोक्ष प्राप्त करता है।

सन्नियच्छति यो वेगमुत्थितं क्रोधहर्षयोः ।
स श्रियो भाजनं राजन् यश्चापत्सु न मुह्यति ॥

जो व्यक्ति आपत्तियोंमें पड़कर भी नहीं डरता और जो क्रोध तथा आनन्दके वेगको रोकता है, वही सच्चा सुख प्राप्त करता है।

बलं पञ्चविधं नित्यां पुरुषाणां निबोध मे ।
यत्तु बाहुबलं नाम कनिष्ठं बलमुच्यते ॥
अमात्यलाभो भद्रं ते द्वितीयं बलमुच्यते ।
तृतीयं धनलाभं तु बलमाहुर्मनीषिणः ॥
यत्त्वस्य सहजं राजन् पितृपैतामहं बलम् ।
अभिजातबलं नाम तच्चतुर्थं बलं स्मृतम् ॥

संसारके मनुष्योंके पास पांच प्रकारके बल होते हैं। जैसे सच्चे सलाहकारोंका बल, धनबल, अधिकारबल, जातिबल, और बाहुबल। इन पांचों बलोंमें बाहुबल सबसे नीची श्रेणीका है।

येन त्वेतानि सर्वाणि संगृहीतानि भारत।
यद्बलानां बलं श्रेष्ठं तत्प्रज्ञाबलमुच्यते ॥

जो इन पाँचों बलोंको प्राप्त कर लेता है, उसे बादको सब बलोंसे श्रेष्ठ बुद्धिबल प्राप्त होता है।

अविश्वसनीय कौन है ?

महते योऽपकाराय नरस्य प्रभवेन्नरः।
तेन वैरं समासज्य दूरस्थोस्मीति नाश्वसेत् ॥

जो सदा बड़े आदमियोंसे बैर करके भी यह कहता है, कि मैं निरपराधी हूँ, उसका कभी विश्वास न करना चाहिये।

स्त्रीषु राजसु सर्पेषु स्वाध्यायप्रभुशत्रुषु।
भोगेष्वायुषि विश्वासं कःप्राज्ञः कर्तुमर्हति ॥

स्त्री, राजा, सांप, अध्यापक, स्वामी, आयु और भोग—ये सब अविश्वसनीय हैं।

बुद्धिकी मार।

प्रज्ञाशरेणाभिहतस्य जन्तोश्चिकित्सकाः सन्ति न चौषधानि।
न होममन्त्रा न च मङ्गलानि नाथर्वणा नाप्यगदाः सुसिद्धाः ॥

जो अपने बुद्धिरूपी बाणसे शत्रुका नाश करता है, उसके शिकारको कोई भी आराम नहीं कर सकता। अर्थात् जो आदमी किसी बुद्धिमान द्वारा पराजित या जिसे बुद्धिमान अपनी बुद्धि-द्वारा घायल करता है, उसे किसी प्रकारकी भी औषधि, अव्यर्थसे अव्यर्थतम मन्त्र, पूजा अनुष्ठान कोई भी आराम नहीं कर पाते।

भय किससे करना चाहिये ?

सर्पश्चाग्निश्च सिंहश्च कुलपुत्रश्च भारत ।
नावज्ञेया मनुष्येण सर्वे ह्येतेऽतितेजसः ॥

साँप, अग्नि, सिंह और उत्तम कुलीन—इनमेंसे किसीको भी न छेड़ना चाहिये । समझदार व्यक्ति इनसे सदा डरता रहे । क्योंकि ये सभी महा तेजस्वी हैं ।

अग्निस्तेजो महल्लोके गूढस्तिष्ठति दारुषु ।
न चोपयुङ्क्ते तद्दारु यावन्नोद्दीप्यते परैः ॥
स एव खलु दारुभ्यो यदा निर्मथ्य दीप्यते ।
तद्दारु च वनं चान्यन्निर्दहत्याशु तेजसा ॥

भयानक शक्तियोंसे जबतक कोई छेड़खानी नहीं करता, तब तक वे समीप रहकर भी किसी प्रकारका अनिष्ट साधन नहीं कर सकतीं । सब जानते हैं, कि आगकी बराबर कोई भी चीज़ भयानक नहीं है, उसकी ज़रासी चिनगारी भी महा अनर्थ कर डालती हैं, किन्तु जबतक वह शान्त रहती है, तबतक वह अपने निवासस्थान काष्ठको भी कुछ पीड़ा नहीं देती । किन्तु जब उसी काष्ठको रगड़ा जाता है, तब वह स्वयमेव प्रकट होकर सारे बन-को जला डालती है ।



षष्ठ अध्याय

अतिथि सत्कारके नियम।

पीठं दत्वा साधवेऽभ्यागताय आनीयापः परिनिर्णिज्य पादौ।
सुखं पृष्ट्वा प्रतिवेद्यात्मसंस्थां ततो दद्यादन्नमवेक्ष्य धीरः॥

जब किसी गृहस्थके घरमें कोई मेहमान आये, तो सबसे पहले उसे बैठनेका स्थान दे, जल द्वारा पैर धुलाये, पैर धुलाकर कुशल-प्रश्न करे, अनन्तर तृप्ति पर्यन्त भोजन दे।

यस्योदकं मधुपर्कं च गां च न मन्त्रवित्प्रतिगृह्णाति गेहे।
लोभाद्भयादथ कार्पण्यतो वा तस्यानर्थं जीवितमाहुरार्याः॥

जिन गृहस्थोंके घरपर जाकर विद्वान् लोग अच्छी-अच्छी भेंटें नहीं प्राप्त करते, तृप्ति-दायक भोजन नहीं पाते, अथवा जो लोभ, कंजूसी या चलाकीसे अपने घर आये अतिथिको विमुख कर देते हैं। वे व्यक्ति गृहस्थ शब्दका अपवाद हैं।

चिकित्सकः शल्यकर्तावकीर्णो स्तेनः क्रूरो मद्यपो भ्रूणहा च
सेनाजीवी श्रुतिविक्रायकश्च भृशं प्रियोप्यतिथिर्नोदकार्हः॥

किन्तु अतिथियोंमें यदि कोई वैद्य हो, चिकित्सक हो, गर्भ-पात करनेवाला हो, भ्रष्ट ब्रह्मचारी हो, दुष्ट हो, शराबी हो, विद्या बेचनेवाला हो, और जो सदा पापकर्म करता हो, उसका सत्का-

अविक्रेयं लवणं पक्वमन्नं दधि क्षीरं मधु तैलं घृतं च।
तिला मांसं फलमूलानि शाकं रक्तं वासः सर्वगन्धा गुडाश्च ॥

तथा जो ब्राह्मण अतिथि नमक, अनाज, दही, दूध, शहद, तेल, घी, तिल, माँस, फल, कन्द, शाक, कपड़ा, पुष्प और गुड़ बेचे उसके भी पैर अपने हाथसे न धुलाने चाहिये।

अरोषणो यः समलोष्टाश्मकाञ्चनः प्रहीणशोको गतसन्धिविग्रहः।
निन्दाप्रशंसोपरतः प्रियाप्रिये त्यजन्नुदासीनवदेष भिक्षुकः ॥

सच्चा अतिथि वही है, जो सदा शान्त रहता है, पराये द्रव्यको मट्टी या लोहा समझ उसपर अपना मन न डुलाता है, जिसे निन्दासे दुःख और प्रशंसासे सुख न होता हो, जो प्रिय और अप्रियमें भेद-भाव न रखता हो, जो बहुत दिनोंतक किसीके यहाँ धन्ना दिये न पड़ा रहे।

साधुओंके लक्षण।

नीवारमूलेङ्गुदशाकवृत्तिः सुसंयतात्माग्निकार्येषु चोद्यः।
वने वसन्नतिथिष्वप्रमत्तो धुरन्धरः पुण्यकृदेष तापसः ॥

इस संसारमें सच्चे तपस्वी साधु वही हैं, जो फल-मूलोंपर ही अपनी गुज़र करते हों, मानो विजयी और जितेन्द्रिय हों, जो प्रत्येक कार्य्य सावधानीके साथ करते हैं, एवं जो परिचित और अपरिचित किसीको सन्देहकी दृष्टिसे नहीं देखते।

अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत्।
दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ॥

बुद्धिमानसे बैर करके दूर या बचे रहना बड़ा कठिन काम

हैं, क्योंकि बुद्धिमानोंके हाथ बड़े लम्बे होते हैं। उनसे सहज हीमें निष्कृति नहीं मिलती। वे चाहे जितने दूरपर रहें, अपने शिकारको मार ही डालते हैं।

न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्।
विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति॥

प्रत्येक मनुष्यको चाहिये कि वह परीक्षा द्वारा विश्वसनीय और अविश्वसनीय दोनों श्रेणियोंके मनुष्योंका निर्णय कर ले और बादको जैसेके साथ तैसा ही व्यवहार करे। यदि अविश्वसनीयके साथ विश्वसनीयोंके जैसा व्यवहार करेगा, तो उसका सर्वनाश हो जायेगा।

अनीर्षुर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत॥
पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद्रक्ष्या विशेषतः॥

समझदार मनुष्योंको चाहिये, कि वे किसीकी भी मजाक़ न करें। स्त्रियोंको सदा अपने अधीन रखें। किसीके हिस्सेको छीननेके लिये मन न दौड़ायें। सबसे मधुर अलाप करें एवं सबसे नम्र व्यवहार करें। उन्हें स्त्रियोंके साथ भी मीठा व्यवहार करना चाहिये। परन्तु याद रहे, इतने मीठे न बन जाना, जिससे वे उन्हें अपना गुलाम समझने लगें। यद्यपि महा भाग्यवती स्त्रियां पूजनीया हैं, तथापि सबको अपने अपने पदोंका ख़याल रखना चाहिये। स्त्री घरका धन और शोभा है। इसलिये उसकी

सदा रक्षा करनी चाहिये।

पितुरन्तःपुरं नेयान्मातुर्दद्यान्महानसम्।
गोषु चात्मसमं दद्यात्स्वयमेव कृषिं व्रजेत्॥

मनुष्यको उचित है, कि वह पिताको घरका स्वामी, माताको भण्डारको स्वामिनी और मित्रको व्यापार और सम्पत्तिका रक्षाभार देकर एक चित्तसे खेतोंका काम करे, क्योंकि दोचित्ता होनेसे कोई भी काम सिद्ध नहीं होता।

भृत्यैर्वाणिज्यचारं च पुत्रैः सेवेत च द्विजान्।

नौकरों द्वारा व्यापार और पुत्रों द्वारा, ब्राह्मण-सेवा एवं सत्य व्यवहार द्वारा स्वामीकी सेवा करनी चाहिये।

अद्भ्योऽग्निर्ब्रह्मतः क्षत्रमश्मनो लोहमुत्थितम्॥

जलसे अग्नि होती है, ब्राह्मणोंसे सत्य-निष्ठा उत्पन्न होती है, स्वामीसे प्रतिष्ठा तथा पहाड़ोंसे लोहा पैदा होता है।

तेषां सर्वत्रगं तेजः स्वासु योनिषु शाम्यति।
नित्यं सन्तः कुले जाताः पावकोपमतेजसः॥
क्षमावन्तो निराकाराः काष्ठेऽग्निरिव शेरते।

यद्यपि अग्नि, ब्राह्मण और स्वामी इनका तेज सर्वत्र इन्हींके साथ रहता हैं, किन्तु बाहर उग्र और निवासस्थानमें शान्त रहता है। साथ ही सन्त, साधु, आचारशीला और उत्तम कुलीन व्यक्ति अग्निके समान तेजस्वी होते हैं, तथापि क्षमाशील होनेके कारण काठके भीतर शान्त रूपमें रहनेवाली आगके समान उनका क्रोध बाहर नहीं रहता। सदा भीतर ही छिपा रहता है।

यस्य मन्त्रं न जानन्ति बाह्याश्चाभ्यन्तराश्च ये ॥

स राजा सर्वतश्चक्षुश्चिरमैश्वर्यमश्नुते ।

जिस सर्व समर्थ व्यक्तिकी सलाहों और विचारोंको भीतर और बाहरका कोई भी आदमी नहीं जान सकता, वही अपने कार्य्यमें अचूक सिद्ध हो सकता है और चिरकाल तक अपनी प्रजापर शासन कर सकता हैं।

करिष्यन्न प्रभाषेत कृतान्येव तु दर्शयेत् ॥

राजा आदि कार्य्य-शील व्यक्तियोंको उचित है, कि वे अपने छोटेसे भी छोटे कार्य्योंका सिद्ध होने तक किसीको पता न लगने दें। जब कार्य्य सिद्ध हो जाये, तब सबपर प्रकट कर दे।

धर्मकामार्थकार्याणि तथा मन्त्रो न भिद्यते।

गिरिपृष्ठमुपारुह्य प्रासादं वा रहोगतः ॥

अरण्ये निःशलाके वा तत्र मन्त्रोऽभिधीयते ।

राजाको उचित हैं कि धर्म और अर्थके कार्य्य ऐसे स्थानपर बैठकर करे; जहाँ बाहरी आदमी न जा सकें। सलाह मशविरा करनेके स्थान पर्वत शिखर, महलकी अटारी और वृक्ष-लता शून्य स्थल हैं।

नासुहृत्परमंमन्त्रं भारतार्हति वेदितुम् ॥

अपण्डितो वापी सुहृत् पण्डितो वाप्यनात्मवान् ।

नापरीक्ष्य महीपालः कुर्यात्सचिवमात्मनः ॥

प्रत्येक मनुष्य अपनी सम्मतिको शत्रु, मूर्ख मित्र और चपलसे

न कहे और न बिना परीक्षा किये किसीको अपना सलाहकार बनाये।

अमात्ये ह्यर्थलिप्सा च मन्त्ररक्षणमेव च।
कृतानि सर्वकार्याणि यस्य पारिषदा विदुः॥
धर्मे चार्थे च कामे च स राजा राजसत्तमः।
गूढमन्त्रस्य नृपतेस्तस्य सिद्धिरसंशयम्॥

जिस राजाके धन, प्रजाके भाव और राज सम्बन्धी कार्य्योंको उनके मन्त्री ही जानते हैं, अन्य कोई नहीं जानता, वही राजा सर्व श्रेष्ठ और अजेय माना जाता है। जिस राजाकी कार्य्या-सिद्धियोंका पता केवल उसके सदस्योंको रहता है, ऐरे गैरे नहीं पा सकते, एवं जिसकी सलाहें गुप्त रहती हैं, उसके सारे कार्य्या सिद्धि होते हैं।

अप्रशस्तानि कार्य्याणि यो मोहादनुतिष्ठति।
स तेषां विपरिभ्रंशाद्भ्रश्यते जीवितादपि॥
कर्मणां तु प्रशस्तानामनुष्ठानं सुखावहम्।
तेषामेवाननुष्ठानं पश्चात्तापकरं मतम्॥

जो व्यक्ति भूलसे भी बुरा काम कर बैठता है, वह उन कार्य्योंके नष्ट होते ही स्वयं भी नष्ट हो जाता है। अर्थात् उसका जीवन निन्दनीय समझा जाने लगता है। इसीसे कहते हैं, कि अच्छे कामोंके करनेसे सुख होता है, और उन्हें न करनेसे पछताना पड़ता है।

अनधीत्य यथा वेदान्न विप्रः श्राद्धमर्हति।

एवमश्रुतषाड्गुण्यो न मंत्रं श्रोतुमर्हति ॥

जैसे बिना वेद पढ़ा ब्राह्मण श्राद्धके उपयुक्त नहीं होता, उसी प्रकार राजा राज्यके छः गुण जाने बिना मंत्रियोंमें सलाह करनेका अधिकारी नहीं होता।

स्थानवृद्धिक्षयज्ञस्य षाड्गुण्यविदितात्मनः।
अनवज्ञातशीलस्य स्वाधीना पृथिवी नृप ॥

जो अपने हानि लाभको समझता है, राज्यके छः गुणोंको जानता है, गुणवान् मनुष्योंका आदर करता है, वह प्रभूत पृथ्वीका स्वामी होता है। राज्यके छः गुण ये हैं:-संधि; विग्रह अर्थात् लड़ाई और सुलह करनेके ढङ्गोंसे वाकिफ रहना, सवारी बैठनेके स्थान; अलग रहना, और समयपर उचित सहायता प्राप्त कर लेना।

अमोघक्रोधहर्षस्य स्वयं कृत्वान्ववेक्षिणः।
आत्मप्रत्ययकोशस्य वसुदैव वसुन्धरा ॥

जो राजा वृथा क्रोध नहीं करता और न वृथा प्रसन्न होता है, जो सारे कामोंका निरीक्षण आप ही करता है, जो अपने धनकी आप रक्षा करता है; वह रत्नप्रसवा वसुंधराका चिर-काल तक राज्य करता है।

नाममात्रेण तुष्येत छत्रेण च महीपतिः।
भृत्येभ्यो विसृजेदर्थान्नैकः सर्वचरो भवेत् ॥

जो नाम और राज्य चिन्होंसे ही सन्तुष्ट रहता है, अर्थात् भोग आदिसे सम्बंध नहीं रखता, जो सब सेवकोंको सुख देता

हैं एवं किसीके साथ अन्यान्य अविचार नहीं करता, वही चिर-काल तक राज-सुखोंका उपभोग करता है।

ब्राह्मणं ब्राह्मणो वेद भर्ता वेद स्त्रियं तथा।
अमात्यं नृपतिर्वेद राजा राजानमेव च॥

ब्राह्मणकी परीक्षा ब्राह्मण कर सकता है, पतिकी परीक्षा स्त्री कर सकती है और राजाकी परीक्षा राजा ही कर सकते हैं।

न शत्रुर्वशमापन्नो मोक्तव्यो वध्यतां गतः।
न्यग्भूत्वा पर्युपासीत वध्यं हन्याद्बले सति।
अहताद्धि भयं तस्माज्जायते न चिरादिव॥

शत्रुको पकड़कर उसे त्योंही न छोड़ देना चाहिये, उसे उचित दण्ड देकर निर्बल कर देना चाहिये, यदि वैसे ही छोड़ दिया जायगा, तो अवसर देखकर वह तुम्हारे ऊपर फिर आक्रमण कर देगा।

दैवतेषु प्रयत्नेन राजसु ब्राह्मणेषु च।
नियंतव्यः सदा क्रोधो वृद्धबालातुरेषु च।

देवता, राजा, ब्राह्मण, बृद्ध, रोगी और बालकोंपर कभी क्रोध न करना चाहिये।

निरर्थं कलहं प्राज्ञो वर्जयेन्मूढसेवितम्।
कीर्तिं च लभते लोके न चानर्थेन युज्यते॥

बुद्धिमानोंको उचित हैं, कि वे मूर्खोंकी भांति बिना बात किसी से न लड़ बैठें। क्योंकि सदा निर्वैर रहनेसे प्रसिद्धि और कीर्त्ति प्राप्त होती है। साथ ही कभी आपत्ति आनेकी भी

सम्भावना नहीं होती।

प्रसादो निष्फलो यस्य क्रोधश्चापि निरर्थकः।
नतं भर्तारमिच्छन्ति षंढं पतिमिव स्त्रियः॥

जिसकी प्रसन्नतासे किसी प्रकारका लाभ न हो, और क्रोधसे कुछ हानि न हो, ऐसे स्वामीको उसके सेवक ऐसे छोड़ देते हैं, जिस प्रकार नपुंसकोंको उनकी स्त्रियां छोड़ देती हैं।

न बुद्धिर्धनलाभाय न जाड्यमसमृद्धये।
लोकपर्यायवृत्तान्तं प्राज्ञो जानाति नेतरः॥

सुबुद्धिका फल धन लाभ नहीं है, और न मूर्खताका फल दरिद्रता है। इस लोक और परलोकके व्यवहारोंको पण्डित ही जान सकता है, मूर्ख लोग नहीं जान सकते।

विद्याशीलवयोवृद्धान् बुद्धिवृद्धांश्च भारत।
धनाभिजातवृद्धांश्च नित्यं मूढोवमन्यते॥

विद्या-वृद्ध, शील-वृद्ध, बुद्धिवृद्ध, जाति-वृद्ध, और धन-वृद्धोंका समझदार आदर और मूर्ख निरादर करते हैं।

अनार्य वृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम्।
अनर्थाः क्षिप्रमायांति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा॥

बुरे चरित्रवाले, मूर्ख, परनिन्दक, क्रोधी, कटुभाषी और अधर्मियोंपर सदा आपत्तियां पड़ा करती हैं।

अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक्प्रणिहिता च वाक्॥

किसीसे छल न करना, दान करना, समयकी मर्य्यादाका न

तोड़ना, और सबके कल्याणकी ही बातें करना ये गुण शत्रुको भी मित्र बना लेते हैं।

अविसंवादको दक्षः कृतज्ञो मतिमानृजुः।
अपि संक्षीणकोशोऽपि लभते परिवारणम्॥

जो दरिद्र है, किन्तु मधुर भाषी है, चतुर, कृतज्ञ, बुद्धिमान् और सरल है, उसे मित्र और अनुयायियोंकी कभी कमी नहीं रहती।

धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः॥

धैर्य्य, मन और इन्द्रियोंको जीतना, शुद्ध रहना, दयालुता, कोमलवाणी, और मित्रोंसे प्रेम करना, ये सात गुण लक्ष्मीको बढ़ानेवाले हैं।

असंविभागी दुष्टात्मा कृतघ्नो निरपत्रपः।
तादृङ्नराधिपो लोके वर्जनीयो नराधिप॥

जो पालनीय मनुष्यको अन्न न दे, दुष्ट प्रवृत्तिका हो, कृतघ्न हो, निर्लज्ज हो, ऐसे राजा या व्यक्तिको दूरसे ही नमस्कार कर देना चाहिये।

न च रात्रौ सुखं शेते स सर्प इव वेश्मनि।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोभ्यन्तरं जनम्॥

जो स्वयं दोष करके भी निर्दोष मनुष्यको क्रुद्ध करता है, वह सांपके समान रातको सुखसे नहीं सोता।

येषु दुष्टेषु दोषः स्याद्योगक्षेमस्य भारत।

सदा प्रसदनं तेषां देवतानामिवाचरेत् ॥

जिनके विगड़नेसे कुछ दोष हो, अर्थात् राज्य और धनमें हानि हो, ऐसे मनुष्योंको देवताओंकी भांति सदा सन्तुष्ट रखना चाहिये।

येऽर्थाः स्त्रीषु समायुक्ताः प्रमत्तपतितेषु च।
ये चानार्ये समासक्ताः सर्वे ते संशयं गताः ॥

जो स्त्रियोंमें रमा रहता हो, जो दुष्टोंके संग बैठता हो, उन सबसे सदा सशंकित रहना चाहिये।

यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन्नद्यामश्मप्लवा इव ॥

जो लोग स्त्री, कपटी और निर्बोध शासकोंके अधीन रहते हैं, उनका जीवन हर समय पत्थरोंसे भरी नदीमें डूबनेकी भांति विघ्नोंसे घिरा रहता है।

प्रयोजनेषु ये सक्ता न विशेषेषु भारत।
तानहं पण्डितान्मन्ये विशेषा हि प्रसङ्गिनः ॥

जो व्यक्ति अपने आवश्यकतानुसार प्रत्येक काम करता है, लोभसे 'अति' को आश्रय नहीं देता, पण्डित वही कहा जा सकता है। क्योंकि 'अति' सदा उपद्रव उत्पन्न करनेवाली है।

यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ॥

जिस मनुष्यकी छली, खुशामदी और वेश्यायें प्रशंसा करें, समझ लो, कि उसके मनकी खैर नहीं।

सप्तम परिच्छेद।

अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरपि ब्रुवन्।
लभते बुद्ध्यवज्ञानमवमानं च भारत॥

कभी किसीको असमय या बेमौकेकी बात न कहनी चाहिये। बेमौके बोलनेवाले बृहस्पतिकी भांति पण्डित भी निन्दाके पात्र बनते हैं।

प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः।
मंत्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः॥

कोई मनुष्य दान द्वारा, कोई मधुरलाप द्वारा लोगोंका प्यारा होता है। किन्तु जो शुभ सलाहें देनेसे संसारका प्यारा होता है, सच्चा प्यारा वही कहाता है।

द्वेष्ये न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः॥
प्रिय शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह॥

साधु, बुद्धिमान और पण्डितोंसे वैर न करना चाहिये। अपने मित्रको हितचिन्ता करनी चाहिये और शत्रुसे बचाव रखना चाहिये।

न बृद्धिर्बहु मन्तव्या या बृद्धिः क्षयावहेत्।
क्षमोऽपि बहु मन्तव्यो यः क्षयो बृद्धिमावहेत्॥
न स क्षयो महाराज यः क्षयो बृद्धिमावहेत्।
क्षयः स इह मंतव्यो यं लब्ध्वा बहु नाशयेत्॥

जिस वृद्धिसे नाश होनेका भय हो, उस वृद्धिका त्याग कर देना चाहिये, और जिस हानिसे उन्नतिकी आशा हो, उस हनिको सहर्ष आलिङ्गन करना चाहिये; क्योंकि वह हानि, हानि नहीं है, वरन् हानि वही है, जिससे अवनति हो।

समृद्धा गुणतः केचिद्भवंति धनतोऽपरे।
धनवृद्धात्गुणैर्हीनान्धृतराष्ट्र विवर्जय॥

धनका धनी ही धनी नहीं कहाता, गुणका धनी भी धनी ही कहाता है। फिर कोरे धनवान्से गुणका धनी ही श्रेष्ठ है।

अतीव गुणसम्पन्नो न जातु विनयान्वितः।
सुसूक्ष्ममपि भूतानामुपमर्दमुपेक्षते॥

तिसपर जो अत्यन्त गुणी होता हुआ भी शीलवान् नहीं है, वह बड़ा भयानक होता है, क्योंकि उसकी प्रवृत्ति किसीका नाश करनेके लिये ही होती है।

परापवादनिरताः परदुःखोदयेषु च।
परस्परविरोधे च यतंते सततोत्थिताः॥

दुष्ट लोग, दूसरोंकी निन्दा करते हैं, दूसरेको आपित्तमें फंसा देखकर प्रसन्न होते हैं और सदा प्रातःकाल उठते ही विरोधकी बात सोचा करते हैं।

सदोषं दर्शनं येषां संवासे सुमहद्भयम्।
अर्थादाने महान्दोषः प्रदाने च महद्भयम्॥

जिनके दर्शनसे दोष लगता है, उनके सङ्ग रहनेसे हरदम,

तान खतरेमें रहती हैं। उनसे लेन-देन करना भी अपनेको जोखि-
ममें डालना है।

> ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः।
> ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः॥
> युक्ताश्चान्यैर्महादोषैर्ये नरास्तान् विवर्जयेत्।
> निवर्तमाने सौहार्दे प्रीतिर्नीचे प्रणश्यति॥
> या चैव फलनिर्वृत्तिः सौहृदे चैव यत्सुखम्।
> यतते चापवादाय यत्नमारभते क्षये॥
> अल्पेऽप्यपकृते मोहान्न शांतिमधिगच्छति।
> तादृशै सङ्गते नीचैर्नृशंसैरकृतात्मभिः॥
> निशम्य निपुणं बुध्द्या विद्वान्दूराद्विवर्जयेत्।

जो परस्परमें विरोध कराते हैं, उन पापी, स्वार्थी, दुष्ट और निर्लज्जोंका सङ्ग न करना चाहिये। तथा और भी दोषी मनुष्योंसे दूर ही रहना श्रेष्ठ हैं, क्योंकि ये प्रीतिकी रीतिका नाश कर देते हैं और जब प्रीति नष्ट हो जाती है, तब मानों सारे ही सुख नष्ट हो जाते हैं। अतएव पहलेसे ही नीचोंसे सङ्ग करना और प्रेम करना अनुचित है। सच्ची मैत्रीमें बड़े सुख हैं, किन्तु वे सुख दुष्टोंकी सङ्गतिसे प्राप्त होनेकी अपेक्षा नष्ट ही हो जाते हैं। क्योंकि नीच लोग सदा अनादर और उपद्रवोंकी ही चेष्टा किया करते हैं। दुष्ट लोग सदा अपने साथीको बेइज्जत करनेका यत्न करते हैं, उसको हानि पहुंचानेका उद्योग करते हैं। अतएव बुद्धिमानोंको उचित है, कि जो ऐसे मित्र अपना

थोड़ासा दोष करके भी शान्त न हों, तो उन्हें दूरसे ही त्याग दे।

यो ज्ञातिमनुगृह्णाति दरिद्रं दीन मातुरम्॥
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते।
ज्ञातयो वर्धनीयास्तैर्या इच्छन्त्यात्मनः शुभम्॥
कुलवृद्धिं च राजेन्द्र तस्मात्साधु समाचर।
श्रेयसा योक्ष्यते राजन् कुर्वाणो ज्ञातिसत्क्रियाम्॥
विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ।

जो व्यक्ति अपनी जाति, दरिद्र, दीन और रोगियोंके ऊपर दयाभाव रखता है, वह अपने पशुधन और पुत्रधन दोनोंके साथ चिर-सुखी रहता है। जो व्यक्ति अपने कल्याणकी कामना करते हैं, उन्हें चाहिये, कि वे सबसे पहले अपनी जातिवालोंकी रक्षा करें।

किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः॥
ज्ञातिभिर्विग्रहस्तात न कर्तव्यः शुभार्थिना।
सुखानि सह भोज्यानि ज्ञातिभिर्भरतर्षभ॥
सम्भोजनं सङ्कथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम्।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि न विरोधः कदाचन॥
ज्ञातयस्तारयन्तीह ज्ञातयो मज्जयन्ति च।
सुवृत्तास्तारयन्तीह दुर्वृत्ता मज्जयन्ति च॥

प्रत्येक समझदार आदमीका कर्त्तव्य है, कि वह अपने जाति वालोंके साथ बैठकर एक साथ भोजन करे, कभी उनसे विरोध

न करे। उनसे प्रीति करनी चाहिये और सदा मधुरालाप करना चाहिये। क्योंकि प्रत्येक मनुष्यकी उन्नति और अवनति उसकी जातिवालोंपर ही अवलम्बित है। दुष्टलोग तो सदा अवनतिके मार्गपर ही ले जाते हैं, पर जातिवाले अपनेका बुरा नहीं चाहते।

श्रीमन्तं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति।
दग्धहस्तं मृग इव स एनस्तस्य विन्दति।

जिस प्रकार विषमें बुझे वाण धारण करनेवाले व्याधेको देख पशु घबराते हैं, उसी प्रकार जिस लक्ष्मीवान् किन्तु दुष्ट प्रकृतिके आदमीको देखकर उसके जातिवाले लोग घबराते हैं, उसकी बराबर संसारमें दूसरा पापी नहीं है।

येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा।
आदावेव न तत्कुर्यादध्रुवे जीविते सति॥

जीवन अनित्य है। अतएव पहलेसे ही ऐसे काम करने चाहियें जिसमें बुढ़ापेके समय खटियापर पड़े पड़े पछताना न पड़े।

न कश्चिन्नापनयते पुमानन्यत्र भार्गवात्।
शेषसम्प्रतिपत्तिस्तु बुद्धिसत्स्वेव तिष्ठति॥

संसारमें रहकर सबसे भूलें होती हैं। जो लोग शुक्राचार्यकी भांति चतुर भी हैं, उन्हें भी वक्तके चक्करमें पड़कर अनीतिके काम करने पड़ते हैं, परन्तु बुद्धिमान् वही है, जो एक बार भूल करके आगेके लिये सावधान हो जाये।

सुव्याहृतानि धीराणां फलतः परिचिन्त्य यः।

अध्यवस्यति कार्येषु चिरं यशसि तिष्ठति ॥

जो सदा पण्डितोंके कहे अनुसार काम करता है, वह बहुत दिनों तक सुख और यशको भोगता है।

असम्यगुपयुक्तं हि ज्ञानं सुकुशलैरपि।
उपलभ्यं चाविदितं विदितं चाननुष्ठितम् ॥

जो समझदार होकर भी बेसमझोंका कहना मानता है, जो ज्ञानवान् होते हुए भी विना विचारे अज्ञानियोंकी भांति काम करता है, उसका कभी कल्याण नहीं होता।

पापोदयफलं विद्वान्यो नारभति वर्धते।
यस्तु पूर्वकृतं पापमविमृश्यानुवर्तते ॥

जो व्यक्ति एकबार भूल करके भी दोबारा भूल करते समय पिछली भूलका ख़याल नहीं रखता, उस पापीको सदा हानि ही उठानी पड़ती है।

अगाधपङ्के दुर्मेधा विषमे विनिपात्यते ॥
मन्त्रभेदस्य षट् प्राज्ञो द्वाराणीमानि लक्षयेत।
अर्थसन्ततिकामस्तु रक्षेदेतानि नित्यशः ॥
मदं स्वप्नमविज्ञानमाकारं चात्मसम्भवम्।
दुष्टामात्येषु विश्रम्भं दूताच्चाकुशलादपि ॥
द्वाराण्येतानि यो ज्ञात्वा संवृणोति सदा नृप।
त्रिवर्गाचरणे युक्तः स शत्रूनधितिष्ठति ॥

धनकी लिप्सा, बेतरह सोना, अज्ञान, अकर्मण्यता, दुष्ट सलाह देनेवालोंका विश्वास औह मूर्ख हरकारोंका भरोसा, ये

छे बातें ऐसी हैं, जिनसे प्रत्येक समर्थवान् व्यक्तिका पतन हो जा सकता है, अतएव जो लोग अपनी उन्नति चाहते हैं, वे इन छहो द्वारोंको वन्द रखें।

न वै श्रुतमविज्ञाय वृद्धामनुपसेव्य वा।
धर्मार्थौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि॥

जो राजा धर्म, अर्थ आदि चतुर्वर्गोंका खयाल रखकर सन्धि-विग्रहके कार्य्य करता है, वह सदा अपने शत्रुओं पर हावी रखता है। जो मनुष्य अपढ़ हो या जो वृद्ध अनुभवी व्यक्तियोंकी सोहबतमें न रहा हो, उसे सहसा कोई काम नहीं करना चाहिये। धर्म और अर्थका महात्म्य अनन्त है, उनका हाल वृहस्पति जैसे तत्व-दर्शी पण्डित भी नहीं जानते।

नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति।

जिस प्रकार समुद्रमें गिरी वस्तुका मिलना दुश्वार होता है, उसी प्रकार मूर्खोंको दिये उपदेशोंका भी कोई फल नहीं होता।

मित्रता करनेके ढंग।

अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम्॥
मत्या परीक्ष्य मेधावी बुद्धया सम्पाद्य चासकृत्।
श्रुत्वा दृष्ट्वाथ विज्ञाय प्राज्ञैर्मैत्रीं समाचरेत्॥

यह बात प्रायः सब जानते हैं कि राखमें गिरा घी किसी काममें भी नहीं आता। ठीक यही बात कुसंगियों—दुष्टों पर फबती है; उन्हें आप कितने ही शास्त्रोंका ज्ञान दीजिये, पर फल कुछ भी न होगा। अतएव प्रत्येक मनुष्यका कर्त्तव्य है,

कि वह जिसके साथ मित्रता करे, या जिसे अपना सलाहकार बनाये पहले उसके चरित्रके बारेमें, स्वभावके बारेमें, भले प्रकारसे बुद्धि द्वारा निश्चय कर ले, कि अमुक व्यक्ति बुद्धिमान है, या मूर्ख या जिसे मैं अपना सलाहकार बनाने जा रहा हूं, वह समझदार है, या नासमझ ।

साधारण उपदेश ।

अकीर्तिं विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ॥

विनय अपयशका, पराक्रम अनर्थका, क्षमा क्रोधका, और सच्चरित्रता कुलक्षणोंका नाश करती है ।

परिच्छदेन क्षेत्रेण वेश्मना परिचर्यया ।
परिक्षेत कुलं राजन् भोजनाच्छादनेन च ॥

मनुष्यके कुलकी परीक्षा भोजन, रहनेके घर, कामों और उसके पहनावेसे होती है ।

उपस्थितस्य कामस्य प्रतिपादो न विद्यते ।
अपि निर्मुक्तदेहस्य कामरक्तस्य किं पुनः ॥

जिस प्रकार मरे हुए मनुष्यको प्रसन्न करनेसे कुछ लाभ नहीं होता, उसी प्रकार कामका अवसर बीत जानेपर उपाय करनेसे कुछ लाभ नहीं होता ।

प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ॥

जो लोग विद्वानकी सेवा करनेमें अपनेको कृतकृत्य समझते

हैं, धार्मिक हैं, सुन्दर स्वभावके हैं; मधुरवाणी बोलते हैं, और अपनेसे हित करते हैं, ऐसे व्यक्तियोंको अपनेसे कभी भिन्न न होने देना चाहिये।

दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लङ्घयेत्।
धर्मापेक्षी मृदुर्ह्रीमान् स कुलीनशताद्वरः॥

जो व्यक्ति चाहे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुआ हो, चाहे छोटे कुलमें उत्पन्न हुआ हो, पर धर्मकी मर्य्यादाका कभी उल्लंघन नहीं करता हो, साथ ही जो बुद्धिमान और जितेन्द्रिय हो, वह भी उत्तम कुलवाले अविवेकियोंसे अच्छा है।

ययोश्चित्तेन वा चित्तं निभृतं निभृतेन वा।
समेति प्रज्ञया प्रज्ञा तयोर्मैत्री न जीर्यति॥

जिन मित्रोंके परस्परमें मन मिले होते हैं, जो परस्परके सुख-दुःख समान रूपसे अनुभव करते हैं, जिनके विचार एकसे हैं, उनका प्रेम कभी छिन्न नहीं होता।

दुर्बुद्धिमकृतप्रज्ञं छन्नं कूपं तृणैरिव।
विवर्जयीत मेधावी तस्मिन्मैत्री प्रणश्यति॥

जो दुष्ट घास-फूससे ढके हुए कूएके समान कपट व्यवसायी हैं, और स्वार्थके लिये बनावटी प्रेम करते हैं, उन्हें कभी अपने पास भी न आने देना चाहिये। क्योंकि उनकी मित्रता बुद्धिमानोंको पसन्द नहीं है।

अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद्बुधः॥

जो व्यक्ति मूर्ख हो, अभिमानी हो, क्रोधी, दुःसाहसी और अधर्मी हो, उससे किसी प्रकार और कभी भी मित्रता न करनी चाहिये।

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते॥

प्रेम या मित्रता करने योग्य व्यक्ति वही है, जो बुद्धिमान है, धर्मात्मा है, सत्यवादी, गंभीर प्रकृतिवाला, प्रेमी, जितेन्द्रिय मर्य्यादाके महत्वको समझनेवाला और महज्जनों, बड़े आदमियोंकी भांति चरित्रवान् हैं।

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतानपि॥

अपनी इन्द्रियोंकी दुष्ट वृत्तिका दमन करना समस्त धर्मोंमें श्रेष्ठ है। क्योंकि उनकी दुष्प्रवृत्तियोंके चरितार्थ होनेपर बड़ेसे बड़े बुद्धिमानोंका पतन होते देर नहीं लगती।

आयु वृद्धिके उपाय।

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥

पण्डितोंका कथन हैं; कि समस्त प्राणियोंमें दयाभाव रखना, कोमल और मृदु बने रहना, अहिंसाके भावकी दृढ़ता पूर्वक रक्षा करना, क्षमा और धैर्य्य धरना, ये सब मनुष्यकी आयु बढ़ाने वाले हैं।

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।

जो व्यक्ति मूर्ख हो, अभिमानी हो, क्रोधी, दुःसाहसी और अधर्मी हो, उससे किसी प्रकार और कभी भी मित्रता न करनी चाहिये।

कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम्।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते॥

प्रेम या मित्रता करने योग्य व्यक्ति वही है, जो बुद्धिमान है, धर्मात्मा है, सत्यवादी, गंभीर प्रकृतिवाला, प्रेमी, जितेन्द्रिय मर्य्यादाके महत्वको समझनेवाला और महज्जनों, बड़े आदमियोंकी भांति चरित्रवान् हैं।

इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद्दैवतानपि॥

अपनी इन्द्रियोंकी दुष्ट वृत्तिका दमन करना समस्त धर्मोंमें श्रेष्ठ है। क्योंकि उनकी दुष्प्रवृत्तियोंके चरितार्थ होनेपर बड़ेसे बड़े बुद्धिमानोंका पतन होते देर नहीं लगती।

आयु वृद्धिके उपाय।

मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना॥

पण्डितोंका कथन है; कि समस्त प्राणियोंमें दयाभाव रखना, कोमल और मृदु बने रहना, अहिंसाके भावकी दृढ़ता पूर्वक रक्षा करना, क्षमा और धैर्य्य धरना, ये सब मनुष्यकी आयु बढ़ाने वाले हैं।

अपनीतं सुनीतेन योऽर्थं प्रत्यानिनीषते।

मतिमास्थाय सुदृढां तदकापुरुषव्रतम् ॥

जो अविचार और अविवेकसे नष्ट हुए अभिप्रायको फिर न्याय और विचारका सहारा लेकर सिद्ध करनेकी चेष्टा करता है, उसकी गणना भी बुद्धिमानोंमें ही होती हैं। किन्तु जो उपायकी चिन्ता न कर अन्धाधुन्ध काममें हाथ डाल देता है, वह किसी समय भी बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता।

आयत्यां प्रतिकारज्ञस्तात्वे दृढनिश्चयः।
अतीते कार्यशेषज्ञो नरोऽर्थैर्न प्रहीयते ॥

जो व्यक्ति आनेवाली आपत्तिको रोकनेके लिये उचित उपायोंकी विवेचना करना जानता है और उपस्थित विपत्तियोंको उत्साहके साथ सिरपर ओट लेता है अथवा जो अपने कार्य्योंके आरम्भ और समाप्तिको जानता है, उसकी किसी समय भी हानि नहीं होती।

कर्मणा मनसा वाचा यदभीक्ष्णं निषेवते।
तदेवापहरत्येनं तस्मात्कल्याणमाचरेत् ॥
मङ्गालम्भन योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम्।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभीक्ष्णदर्शनम् ॥

जो व्यक्ति मन, बचन और कामों द्वारा बुरा काम करता है, उसका अवश्य ही पतन होता है, इसलिये हरएक आदमीको सदा अच्छे ही विचार करने चाहिये, अच्छी ही बातें कहनी चाहियें और सदा अच्छे ही काम करने चाहियें। अच्छे काम करना, विद्यालाभ करना, सदा नम्र व्यवहार करना, साथ ही विद्वानोंकी

संगति करना—ये ही काम प्रत्येक मनुष्यका कल्याण करते हैं।

उद्योग महात्म्य।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान्भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते॥

प्रत्येक मनुष्य उद्योग करनेपर लाभवान् होता है, उद्योग धन और सुखोंका मूल है, उद्योगी सदा सुखी रहता है। उसे अनन्त धनकी प्राप्ति होती है। संसारमें अनेक प्रकारके शुभ कर्म हैं; परन्तु उद्योगकी भांति कोई भी शुभ कर्म नहीं है।

क्षमा माहात्म्य।

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत्पथ्यतमं मतम्॥
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वथा।

जो व्यक्ति संसारमें अपनी उन्नति करना चाहते हैं, वे क्षमा नामक गुणके भक्त बनें। यदि आप असमर्थ हैं और एक मात्र इसी कारण क्षमाका आश्रय लेते हैं, तो यह आपकी दुर्बलता है! तारीफ तब है, जब आप सर्व-समर्थ होकर भी क्षमाका ही आश्रय लें। ऐसा करनेसे ही आप धर्मात्मा कहला सकेंगे।

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान्धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता॥

क्षमा करनेकी शक्ति उसमें है, जो हानिके लिये दुःखित नहीं होता और लाभको अति महत्व नहीं देता।

साधारण उपदेश।

यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते।

कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥

मनुष्यको सदा वे ही काम करने चाहियें, जिनके परिणाम-स्वरूप सुखके भोगनेमें धर्म और यशका नाश न हो। कभी भूल-कर भी अधर्मयुक्त काम न करने चाहिये।

दुःखार्तेषु प्रसक्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यपदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥

इस संसारमें सदा दरिद्र या हमेशा निर्धन वे ही व्यक्ति रहते हैं, जो मूर्ख हैं, नशेबाज, व्यसनी और आलसी हैं, साथ ही उन लोगोंको भी धनकी प्राप्ति नहीं होती, जो इन्द्रियोंके दास और उत्साह हीन हैं।

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवात्सव्यपत्रपम्।
असक्तं मन्यामानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥

जो सदा सबके साथ नम्रताका व्यवहार करता है, लज्जा-शील और सत्यवादी है, उसे मूर्खलोग असमर्थ कहते हैं परन्तु सच पूछो तो कहनेवाले ही असमर्थ हैं। क्योंकि मूर्खोंकी उन्नति नहीं होती, उन्नति गुणवान् व्यक्ति ही पाया करते हैं।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमनिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥

जो व्यक्ति सदा उद्योग करता है, परिश्रमसे पैदा की हुई कमाईमेंसे अपने दीन भाइयोंकी हर तरहसे मद करता है, जीवन संग्राममें कभी पीछे पैर नहीं देता, एक बार जो मुँहसे निकाल देता है; उसे बिना पूरा किये नहीं छोड़ता और जितने भी काम

संगति करना—ये ही काम प्रत्येक मनुष्यका कल्याण करते हैं।

उद्योग महात्म्य।

अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान्भवत्यनिर्विण्णः सुखं चानन्त्यमश्नुते॥

प्रत्येक मनुष्य उद्योग करनेपर लाभवान् होता है, उद्योग धन और सुखोंका मूल है, उद्योगी सदा सुखी रहता है। उसे अनन्त धनकी प्राप्ति होती है। संसारमें अनेक प्रकारके शुभ कर्म हैं; परन्तु उद्योगकी भांति कोई भी शुभ कर्म नहीं है।

क्षमा माहात्म्य।

नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत्पथ्यतमं मतम्॥
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वथा।

जो व्यक्ति संसारमें अपनी उन्नति करना चाहते हैं, वे क्षमा नामक गुणके भक्त बनें। यदि आप असमर्थ हैं और एक मात्र इसी कारण क्षमाका आश्रय लेते हैं, तो यह आपकी दुर्बलता है! तारीफ तब है, जब आप सर्व-समर्थ होकर भी क्षमाका ही आश्रय लें। ऐसा करनेसे ही आप धर्मात्मा कहला सकेंगे।

क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान्धर्मकारणात्।
अर्थानर्थौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता॥

क्षमा करनेकी शक्ति उसमें है, जो हानिके लिये दुःखित नहीं होता और लाभको अति महत्व नहीं देता।

साधारण उपदेश।

यत्सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्या न हीयते।

कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ॥

मनुष्यको सदा वे ही काम करने चाहियें, जिनके परिणाम-स्वरूप सुखके भोगनेमें धर्म और यशका नाश न हो। कभी भूल-कर भी अधर्मयुक्त काम न करने चाहिये।

दुःखार्तेषु प्रसक्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च।
न श्रीर्वसत्यपदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ॥

इस संसारमें सदा दरिद्र या हमेशा निर्धन वे ही व्यक्ति रहते हैं, जो मूर्ख हैं, नशेबाज, व्यसनी और आलसी हैं, साथ ही उन लोगोंको भी धनकी प्राप्ति नहीं होती, जो इन्द्रियोंके दास और उत्साह हीन हैं।

आर्जवेन नरं युक्तमार्जवत्सव्यपत्रपम्।
असक्तं मन्यामानास्तु धर्षयन्ति कुबुद्धयः ॥

जो सदा सबके साथ नम्रताका व्यवहार करता है, लज्जा-शील और सत्यवादी है, उसे मूर्खलोग असमर्थ कहते हैं परन्तु सच पूछो तो कहनेवाले ही असमर्थ हैं। क्योंकि मूर्खोंकी उन्नति नहीं होती, उन्नति गुणवान् व्यक्ति ही पाया करते हैं।

अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम्।
प्रज्ञाभिमनिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ॥

जो व्यक्ति सदा उद्योग करता है, परिश्रमसे पैदा की हुई कमाईमेंसे अपने दीन भाइयोंकी हर तरहसे मद करता है, जीवन संग्राममें कभी पीछे पैर नहीं देता, एक बार जो मुँहसे निकाल देता है; उसे बिना पूरा किये नहीं छोड़ता और जितने भी काम

करता है; सब बुद्धि द्वारा विवेचना करके करता है; उस मनुष्यको कभी सुखोंका ठोटा नहीं होता।

न चातिगुणवस्त्वेषां नात्यंतं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान्कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते॥

लक्ष्मीमें एक बात अनूठी देखी! वह अपनी कृपाका वितरण दो प्रकारके व्यक्तियोंमें कभी नहीं करती। जैसे महागुणी और निर्गुणी। निर्गुणी व्यक्तियोंपर उसकी दया दृष्टिका न होना उतना आश्चर्य्यकारक नहीं, जितना आश्चर्य्यकारक-व्यापार उसकी कृपासे महागुणियोंका वञ्चित होना है।

उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते।

जिस प्रकार उन्मत्त गोको आश्रय; विश्राम और घूमने फिरनेका कोई ठिकाना नहीं होता, उसी प्रकार पापसे कमाये धनके खर्च होनेका कोई ठिकाना नहीं होता।

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्॥
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्।
अधर्मोपार्जिथैर्थः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्॥

वेदाभ्यासका फल यज्ञ है, विद्या पढ़नेका फल नम्र होना है, स्त्री-सेवनका फल पुत्र है और धनका फल धर्म है। अधर्मसे पैदा किये धनसे आप चाहे, जितने पुण्यानुष्ठान कीजिये—श्राद्ध कीजिये, पर वे कभी सफल नहीं होते। इसका करण यह है, कि धन सुखका मूल हैं और धनका मूल है, धर्म। जब आप अधर्मद्वारा धन पैदा करेंगे, तब आप उसके फल-सुखको पानेके

अधिकारी कब हो सकते हैं ?

न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ।
कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ॥

जो लोग धर्मात्मा हैं, वे दुर्गम वन, जल-पूर्ण स्थान, दुःख और आपत्ति तथा गलतियोंसे नहीं डरते ।

उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्ववतां भयम् ।
उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ॥
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ।

जो लोग उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें पहले उन्नतिके जरिये जान रखने चाहिये, उन्नतिके लिये हृदयमें जिन बातोंका होना आवश्यक हैं, वे ये हैं । इन्द्रियोंको जीतना, कठिन और सरल सभी काम करना, काम सावधानीके साथ करना—इसमें भूल न हों, सदा धैर्य रखना, स्मरणशक्तिको बढ़ाना, एवं प्रत्येक कामको विचारपूर्वक करना, ये ही उन्नतिके मूल मन्त्र हैं ।

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥

ऋषि-मुनियोंका बल उनकी साधना या तप है, वे अपने तपोबलसे ही हज़ारों असाध्य काम साध्य कर सकते हैं विद्वानोंका बल वेद या उनका ज्ञान है, दुष्टोंका बल दूसरोंको मारना, कष्ट देना और निन्दा करना है एवं महापुरुषोंका बल क्षमा हैं ।

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।

करता है; सब बुद्धि द्वारा विवेचना करके करता है; उस मनुष्यको कभी सुखोंका ठोटा नहीं होता।

न चातिगुणवत्स्वेषां नात्यंतं निर्गुणेषु च।
नैषा गुणान्कामयते नैर्गुण्यान्नानुरज्यते॥

लक्ष्मीमें एक बात अनूठी देखी! वह अपनी कृपाका वितरण दो प्रकारके व्यक्तियोंमें कभी नहीं करती। जैसे महागुणी और निर्गुणी। निर्गुणी व्यक्तियोंपर उसकी दया दृष्टिका न होना उतना आश्चर्य्यकारक नहीं, जितना आश्चर्य्यकारक-व्यापार उसकी कृपासे महागुणियोंका वञ्चित होना है।

उन्मत्ता गौरिवान्धा श्रीः क्वचिदेवावतिष्ठते।

जिस प्रकार उन्मत्त गौको आश्रय; विश्राम और घूमने फिरनेका कोई ठिकाना नहीं होता, उसी प्रकार पापसे कमाये धनके खर्च होनेका कोई ठिकाना नहीं होता।

अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तफलं श्रुतम्॥
रतिपुत्रफला नारी दत्तभुक्तफलं धनम्।
अधर्मोपार्जितैर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम्॥

वेदाभ्यासका फल यज्ञ है, विद्या पढ़नेका फल नम्र होना है, स्त्री-सेवनका फल पुत्र है और धनका फल धर्म है। अधर्मसे पैदा किये धनसे आप चाहे, जितने पुण्यानुष्ठान कीजिये—श्राद्ध कीजिये, पर वे कभी सफल नहीं होते। इसका करण यह है, कि धन सुखका मूल है और धनका मूल है, धर्म। जब आप अधर्मद्वारा धन पैदा करेंगे, तब आप उसके फल-सुखको पानेके

अधिकारी कब हो सकते हैं ?

न स तस्य फलं प्रेत्य भुङ्क्तेऽर्थस्य दुरागमात् ।
कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ॥

जो लोग धर्मात्मा हैं, वे दुर्गम वन, जल-पूर्ण स्थान, दुःख और आपत्ति तथा गलतियोंसे नहीं डरते ।

उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्ववतां भयम् ।
उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ॥
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ।

जो लोग उन्नति करना चाहते हैं, उन्हें पहले उन्नतिके जरिये जान रखने चाहिये, उन्नतिके लिये हृदयमें जिन बातोंका होना आवश्यक हैं, वे ये हैं । इन्द्रियोंको जीतना, कठिन और सरल सभी काम करना, काम सावधानीके साथ करना—इसमें भूल न हों, सदा धैर्य रखना, स्मरणशक्तिको बढ़ाना, एवं प्रत्येक कामको विचारपूर्वक करना, ये ही उन्नतिके मूल मन्त्र हैं ।

तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ॥

ऋषि-मुनियोंका बल उनकी साधना या तप है, वे अपने तपोबलसे ही हज़ारों असाध्य काम साध्य कर सकते हैं विद्वानोंका बल वेद या उनका ज्ञान है, दुष्टोंका बल दूसरोंको मारना, कष्ट देना और निन्दा करना है एवं महापुरुषोंका बल क्षमा हैं ।

अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः ।

हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम् ॥

जल, फल, दूध, यज्ञके लिये बनाये हवि, ओषधि और दयापूर्ण सत्य वचनों द्वारा व्रत और अनुष्ठान भंग नहीं होते।

न तत्परस्य सदध्यात्प्रतिकूलं यदात्मनः।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात्कामादन्यः प्रवर्तते ॥

जो काम अपने प्रतिकूल हो, उसे करनेकी चेष्टा कभी न करनी चाहिये। धर्म कार्य्य धनद्वारा होते हैं, पर धनकी प्राप्ति सारे काम छोड़कर केवल उसके पीछे पड़नेसे होती है।

अक्रोधेन जयेत्क्रोधमसाधुं साधुना जयेत्।
जयेत्कदर्यं दानेन जयेत्सत्येन चानृतम् ॥

बुद्धिमानको आवश्यक है, कि वह क्षमाद्वारा क्रोधको, साधुता द्वारा दुष्टोंको, कोमलवाणीके दानद्वारा या कुछ दे दिलाकर मूर्खोंको और असत्यको सत्य द्वारा जीत लें।

स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ॥

स्त्री, धूर्त्त, आलसी, डरपोक, दुष्ट अभिमानी, चोर कृतघ्न और नास्तिकपर कभी विश्वास न करना चाहिये।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते कीर्त्तिरायुर्यशो बलम् ॥

जो व्यक्ति सदा देवता और बूढ़ोंकी सेवा करता है, उसे निःसन्देह कीर्त्ति, आयु, यश और बलकी वृद्धि होती है।

अतिक्लेशेन येऽर्थाः स्युर्धर्मस्यातिक्रमेण वा।

अरेर्वा प्रणिपातेन मास्म तेषु मनः कृथाः ॥

उस धनको पानेकी कल्पना स्वप्नमें भी न करनी चाहिये, जो अत्यन्त क्लेश, अधर्म और शत्रुओंकी खुशामदसे मिलता हो।

अविद्यः पुरुषः शोच्य शोच्यं मैथुनमप्रजम्।
निराहाराः प्रजाः शोच्याः शौच्यं राष्ट्रमराजकम् ॥

मूर्ख मनुष्योंकी बुद्धिपर, विवाह करके भी पुत्र-प्राप्ति न होनेपर, प्रजाकी निःसन्देह और शासनहीन राज्य अथवा वृद्ध व्यक्ति-हीन परिवारोंपर शोक करना ही पड़ता है।

अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा।
असम्भोगो जरा स्त्रीणां वक्शल्यं मनसो जरा ॥

मनुष्योंके लिये मार्ग, पहाड़ोंके लिये उनमेंसे जल गिराना, स्त्रियोंके लिये असंभोग और भले आदमियोंके लिये बुरा वचन कहना एक प्रकारसे बुढ़ापेकी भाँति दुःखदायी है।

अनाम्नायमला वेदा ब्राह्मणस्याव्रतं मलम्।
मलं पृथिव्या बाह्लिकाः पुरुषस्यानृतं मलम्।
कौतूहलमला साध्वी विप्रवासमलाः स्त्रियः ॥

वेदाभ्यास न करना, ब्राह्मणोंका व्रतोद्यापन न करना, पृथ्वीके वाह्लीक नामके स्थान, पुरुषोंको झूठ बोलनेकी प्रवृत्ति, पतिव्रता स्त्रियोंका चञ्चलता दिखाना और स्त्रियोंका वियोगी बनना—ये सब एक प्रकारके दुःख हैं।

सुवर्णस्य मलं रूप्यं रूप्यस्यापि मलं त्रपु।
ज्ञेयं त्रपुमलं सीसं सीसस्यापि मलं मलम् ॥

सुवर्णका मल चाँदी है, चाँदीका मल तांबा है, ताँबेका मल सीसा है और सीसेका मल लोहा है।

न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत्स्त्रियः।
नेन्धनेन जयेदग्निं न पानेन सुरां जयेत्॥

निद्राको सोनेसे, स्त्रियोंको कामवासना चरितार्थ करके, अग्निको ईंधनद्वारा और शराबको पीनेसे वशमें करनेकी चेष्टा न करनी चाहिये। यदि ऐसा होगा, तो ये चीजें कम होनेके स्थानपर बढ़ेंगी ही।

यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधिनर्जिताः।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम्॥

जो दानद्वारा मित्रोंको, युद्धसे शत्रुओंको और भोजन वस्त्र द्वारा कुटुम्बियोंको वशमें रखते हैं, वे ही अपने जीवन-संग्राममें सफल होते हैं।

सहस्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते॥

जिन लोगोंके पास हज़ारों रुपये होते हैं वे भी संसारमें रहते और जीते हैं और जिनके पास केवल सौ रुपये हैं, वे भी जीते हैं। ऐसा ख़याल कर प्रत्येक परिवारको अपने समस्त व्यक्तियोंको यथोचित बाँटकर योग्य वस्तुओंको भोगना चाहिये। ऐसा करने से ही सुख मिलता है।

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति॥

लोभ और लिप्साओंका पेट बड़ा गहरा है, उसमें आप एक बार घुस जाइये, फिर तो मुश्किलसे ही छुटकारा मिलेगा। किन्तु फल-प्राप्ति तनिक भी नहीं होती। क्योंकि यदि एक व्यक्ति यह चाहने लगे, कि सारे संसारके धन, स्त्री और पशुओंका मालिक एकमात्र मैं ही हो जाऊँ; तो यह बात एकदम असम्भव है।

अष्टम् परिच्छेद।

साधारण उपदेश।

योऽभ्यर्चितः सद्भिरसज्जमानः करोत्यर्थं शक्तिमहापयित्वा।
क्षिप्रं यशस्तं समुपैति सन्तमलं प्रसन्ना हि सुखाय सन्तः॥

जो आदर पाकर अभिमानको छोड़कर, अपनी शक्तिके अनुसार अच्छा काम करता है; वह अति शीघ्र समस्त सुखोंका अधिकारी होता है। एक महात्मा, यदि प्रसन्न हो जाये तो वह सारे संसारका उपकार कर सकता है।

महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः सन्त्यजत्यनपाकृष्ट एव।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णां त्वचं सर्प इवावमुच्य॥

जो व्यक्ति दरिद्र होकर भी पाप-पूर्ण महाधनका अधिकारी नहीं होना चाहता और निरन्तर धर्म करता रहता है, वह शीघ्र ही समस्त दुःखोंसे छुटकारा पाकर इस प्रकार सुख भोगता है, जिस प्रकार साँप पुरानी केंचुलीका त्यागकर सुखी होता है।

अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥

झूठ बोलकर फायदा उठाना, स्वामीसे दूसरोंकी चुगली करना और सबके सामने गुरुकी निन्दा करना ये तीनों कार्य बड़े ही दुष्कर्म और पाप पूर्ण है। शास्त्रकारोंने इन्हें ब्रह्म-हत्या की बराबर कहा है।

असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः।
अशुश्रूषा त्वरा श्लेषा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः॥

जो मनुष्य किसीकी वृथा निन्दा करता है, अथवा किसीसे ईर्ष्या करता है, वह मानो मृत्युका आवाहन करता है। जो मिथ्या बकबाद करता है, वह मानो अपनी लक्ष्मीका निरादर करता है। जो व्यक्ति प्रत्येक कार्यमें आतुरता दिखाये, गुरुकी सेवासे विमुख हो, साथ ही अपनी प्रशंसा अपने मुंहसे करता हो, वह मानो अपनी विद्या और बुद्धिका अपने आप ही शत्रु है।

आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च॥
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः।

आलस्य, मद, भूल करना, चञ्चलता, बुरी सम्मति, कठोरता, अभिमान और लोभ करना ये सात दोष विद्यार्थियोंके लिये अति निन्दनीय हैं।

सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत्सुखम्॥

विद्यार्थी लोग जबतक विद्याभ्यास करें, तबतक वे सुखोंकी आशाका एकदम त्याग कर दें। क्योंकि विद्या, सुख चाहनेवालोंको नहीं मिलती। विद्या विपत्तियोंका आलिङ्गन करनेवालेको प्राप्त होती है।

नग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः।
नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां बामलोचना॥

आग ईन्धन द्वारा, स्त्रियां भोग द्वारा, समुद्र नदियों द्वारा और मौत आमिदयोंसे कभी और किसी समय भी तृप्त नहीं हो सकती।

आशा धृतिं हन्ति समृद्धिमन्तकः क्रोधः श्रियं हन्ति यशः कदर्यता।
अपालनं हन्ति पशूंश्च राजन्नेकी वृद्धो ब्राह्मणो हन्ति राष्ट्रम्॥

आशा धैर्य्यको, समय सम्पत्तिको, क्रोध लक्ष्मीको, यश दुष्टताको, बेपरवाही पशुओंको और क्रुध हुआ ब्राह्मण सारे राज्यका नाश कर देता है।

आजश्च कांस्यं रजतं चनित्यं मध्वाकर्षः शकुनिः श्रोत्रियश्च।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीन एतानि ते सन्तु गृहे सदैव॥

बकरी, कांसा, चान्दी, शहद, ज्योतिर्विद्, वेदविदु ब्राह्मण, वृद्ध, जातिवाले और कुलीन ये सब जिस समर्थ व्यक्तिके यहां निरन्तर बने रहते हैं, उसका सदा कल्याण होता है।

अजोक्षा चन्दनं वीणा आदर्शो मधुसर्पिषी।
विषमौदुम्बरं शङ्खः स्वर्णनाभोऽथ रोचना॥

मनुकी आज्ञा है, कि प्रत्येक गृहस्थको अपने घरमें गाय या

बकरी आदि पशु, तैल, चन्दन, वीणा आदि बाजे, शीशा, शहद, घी, और शालिग्रामकी मूर्त्ति तथा गोरोचन आदि मांगलिक वस्तुएं रखनी चाहियें।

गृहे स्थापयितव्यानि धन्यानि मनुरब्रवीत्।
देव ब्राह्मणपूजार्थ मतिथीनां च भरत्॥

क्योंकि ये सब वस्तुएं समयपर देवता, अतिथि और ब्राह्मणोंकी पूजा तथा सत्कारमें काम आती हैं।

इदं च त्वां सर्वपरंब्रवीमि पुण्यं पदं तात महाविशिष्टम्।
न जातु कामान्न भयान्न लोभाद्धर्मं जह्याज्जीवितस्यापिहेतोः॥

संसारमें सर्वोत्तम, श्रेष्ठ और उपकारक मत यही है, कि प्रत्येक व्यक्ति, काम, लोभ और जीवनके स्वार्थवश किसी समय तथा किसी प्रकार भी धर्मका त्याग न करे। क्योंकि धर्म नित्य और सुख-दुःख अनित्य हैं।

नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः।
त्यक्त्वा नित्यं प्रतितिष्ठस्व नित्य सन्तुष्य त्वं तोषपरो हि लाभः॥

पण्डितोंका कथन है, कि जीव नित्य और उसका शरीरिक जीवन अनित्य है अथवा संसारका कारण भूत अविद्या आदि अनित्य हैं। अतः मनुष्यको चाहिये, कि वह अनित्य सुख—दुःखोंको छोड़कर, नित्य धर्म और जीवके आदि स्वरूप परमात्माका सेवन करे; ऐसा करनेसे ही परम सन्तोष होता है।

महाबलान्पश्य महानुभावान्प्रशास्य भूमिं धनधान्यपूर्णाम्॥
राज्यानि हित्वा विपुलांश्च भोगान् गतान्नरेन्द्रान्वशमन्तकस्य।

संसारकी बड़ी विचित्र गति है। यहां पर सैंकड़ों महा-प्रतापी दौर्दण्ड राजाओंने आसमुद्र हिमाचल पर्य्यन्त पृथ्वीका राज्य किया, किन्तु मरते समय वे अपने साथ संसारके एक भी भोगको नहीं ले गये।

मृतं पुत्रं दुःखपुष्टं मनुष्या उत्क्षिप्य राजन् स्वगृहान्निर्हरन्ति।
तं मुक्तशाः करुणंरुदन्ति चितामध्ये काष्ठमिव क्षिपन्ति॥

और यही क्या; लोग अपने पुत्रोंका बड़े कष्टसे लालन पालन करते, सैंकड़ो विपत्तियां सहकर उसे बड़ा करते हैं, जब मर जाता है, तो केवल रोते हुए उसे श्मशानमें ले जाते और लक-ड़ियोंके साथ जलाकर भाग आते हैं, उनमेंसे एक भी उसके साथ नहीं जाता।

अन्यो धनं प्रेतगतस्य भुंक्ते वयांसि चाग्निश्च शरीरधातून्।
द्वाभ्यामयं सह गच्छत्यमुत्र पुण्येन पापेन च वेष्ट्यमानः॥

मृतक मनुष्य, पूर्वमें एकत्रित किये धनको अपने साथ नहीं ले जाता, उसका भोग दूसरे ही आदमी करते हैं। यदि कहो, कि उसका शरीर उसके साथ जाता है, तो यह भी बात ठीक नहीं, शरीरको चिताकी आग भस्म कर देती है। फिर उसके साथ क्या जाता है? जाता है, केवल अपने जीवनमें किये हुए पाप और पुण्य।

उत्सृज्य विनिवर्तन्ते ज्ञातयः सुहृदः सुताः।
अपुष्पानफलान्वृक्षान् यथा तात पतत्रिणः॥

मृतक मनुष्यको जातिवाले, सम्बन्धी और मित्र ऐसे

छोड़ देते हैं, जिस प्रकार फल-फूल हीन शुष्क वृक्षको पक्षीगण।

अग्नौ प्रास्तं तु पुरुषं कर्मान्वेति स्वयंकृतम्।
तस्मात्तु पुरुषो यत्नाद्धर्मं सञ्चिनुयाच्छनैः॥

उसके साथ केवल उसके किये कर्म ही जाते हैं। इसलिये जिसको अपने मरनेके बाद सुख और शान्ति पानेकी अभिलाषा हो, वह अपने जीवनमें सदा शुभ कर्म ही करे।

अस्माल्लोकादूर्ध्वं मनुष्य चाधो महत्तमस्तिष्ठति ह्यंधकारम्।
तद्वै महामोहनमिन्द्रियाणां बुध्यस्व मा त्वां प्रलभेत राजन्॥

इस मर्त्यलोकके ऊपर स्वर्ग है और इस लोकके नीचे नरक है, जिसे पौराणिक भाषामें अन्ध तामिस्र नरक कहा गया है, उस लोकमें तमोगुणी पापी लोग ही जाकर बसते हैं। इसलिये जो मनुष्य स्वर्ग-सुखोंको प्राप्त करना और अन्धतामिस्रके दुःखोंसे बचना चाहे, वह अपने जीवनमें तमोगुणी कार्य अर्थात् काम, क्रोध, लोभ जनित दुष्कर्म न करे।

इदं वचः शक्ष्यसि चेद्यथावन्निशम्य सर्वं प्रतिपत्तुमेव।
यशः परं प्राप्स्यसि जीवलोके भयं न चामुत्र न चेह तेऽस्ति॥

जो लोग नीति द्वारा प्रतिपादित उपदेशोंको सुनकर तदनुसार कार्य्य भी करते हैं, या करनेकी अभिलाषा रखते हैं, वे अपने जीवनमें अक्षय्य सुख, अनन्त शान्ति और अतुल यशके अधिकारी होते हैं। संसारमें उनके लिये किसी प्रकारका भी भय नहीं होता।

आत्मा नदी भारत पुण्यतीर्था सत्योदका धृतिकूला दयोर्मिः ।
तस्यां स्नातः पूयते पुण्यकर्मा पुण्यो ह्यात्मा नित्यमलोभएव ॥

कामक्रोधग्राहवतीं पञ्चेन्द्रियजलां नदीम् ।
नावं धृतिमयीं कृत्वा जन्मदुर्गाणि सन्तर ॥

मनुष्यकी आत्मा एक नदीके मानिन्द है, उसमें सत्यरूपी जल भरा है, दया और धैर्य्य ये दोनों उसके वार-पारके तट हैं नम्रता उस नदीमें पैदा होनेवाली तरंगे, पञ्चेन्द्रिय इसमें उतरनेकी पैरियां और काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि मगर और नाके रहते हैं। जो महात्मा उन नाकों और मगरोंसे सावधान रहकर इसमें स्नान किया करता है, वह परम सन्तोष प्राप्त करता है साथ ही जो व्यक्ति परमात्माभक्ति और धैर्य्य-रूपी नाव द्वारा इस नदीको पार कर लेता है, वह तो मानों जीवन मुक्त हो जाता है।

प्रज्ञावृद्धं धर्मवृद्धं स्वबन्धुं विद्यावृद्धं वयसा चापि वृद्धम् ।
कार्य्याकार्ये पूजयित्वा प्रसाद्य यः सम्पृच्छेन्न स मुह्येत्कदाचित् ॥

धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत्पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ॥

जो व्यक्ति विद्या, बुद्धि, धर्म और वयोवृद्ध तथा मित्रोंसे सलाहकर प्रत्येक कामको करने या न करनेके लिये मीमांसा कर लेता है, उससे कभी गलती नहीं होती।

जो धैर्य्य द्वारा पेटसे लेकर जांघतक नीचेके अङ्गकी, नेत्रों द्वारा हाथ पैरकी, मनसे नेत्र और कान और कर्मों द्वारा मन

और वचनकी रक्षा करता है, उसे कभी दुःखोंसे सामना नहीं करना पड़ता।

धर्मनिष्ठ ब्राह्मण।

नित्योदकी नित्ययज्ञोपवीती नित्यस्वाध्यायी पतितान्नवर्जी।
सत्यं ब्रुवन्गुरवे कर्म कुर्वन्न ब्राह्मणश्च्यवते ब्रह्मलोकात् ॥

ब्राह्मणके घरमें जन्म लेकर जो व्यक्ति—दूसरे शब्दोंमें संस्कारोंसे पवित्र हुआ जो ब्राह्मण—नित्य स्नान करता है, नित्य वैदिक कृत्य करता है, रोज वेद-पाठ करता है, सदा शुद्ध अन्न खाता है; सत्य भाषाके साथ गुरुजनोंकी सेवा करता है, वही सच्चा ब्राह्मण कहाता है और वही धर्ममें स्थित रहता है।

सच्चा क्षत्रिय।

अधीत्य वेदान्परिसंस्तीर्य चाग्नीनिष्ट्वा यज्ञैः पालयित्वा प्रजाश्च।
गोब्राह्मणार्थं शस्त्रपूतान्तरात्मा हतः संङ्ग्रामे क्षत्रियः स्वर्गमेति ॥

जो क्षत्रिय नित्य वेदोंको पढ़ता है, नित्य अग्निहोत्र और समय-समयपर शास्त्रोक्त यज्ञ करता है, अपने आश्रम में रहने वाले व्यक्ति अर्थात् प्रजाका धर्म-पूर्वक पालन करता है, एवं जो धर्मरक्षा, गौरक्षा और ब्राह्मणरक्षाके लिये शत्रुओंसे संमुख—संग्राममें लड़कर प्राण त्याग करता है, वही सच्चा क्षत्रिय कहाता है और उसे ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है।

साधु वैश्य।

वैश्योधीत्य ब्राह्मणन्क्षत्रियांश्च धनैः काले संविभज्याश्रितांश्च।
त्रेतापूतं धूमामाघ्राय पुण्यं प्रेत्य स्वर्गे दिव्यसुखानि भुंक्ते ॥

जो वैश्य वेदोंको यथावत् पढ़े, समय पर ब्राह्मण, राजा और सेवकोंको धनदान करे, एवं यज्ञ कार्य्य करके घर और परिवारको पवित्र करे, वही वैश्य साधु कहाता है और वही व्यापारमें सम्पत्तिको प्राप्त कर सुखोंका अधिकारी होता है।

स्वामी-भक्त शूद्र।

ब्रह्मक्षत्रं वैश्यवर्णं च शूद्रः क्रमेणैतान्न्यायतः पूजयानः।
तुष्टेष्वेतेष्वव्यथो दग्धपापस्त्यक्त्वा देहं स्वर्गसुखानि भुङ्क्ते॥

जो शूद्र सदा नम्र भावसे वेदपाठी ब्राह्मण, प्रजा-पालक क्षत्रिय और कृषि कर्त्ता वैश्यकी काय-मनो वाक्य द्वारा भक्ति पूर्वक सेवा करता है, वह इस लोकमें सुख और मरनेपर परलोकमें सुख पाता है।

उपसंहार।

कर्त्तव्यं पुण्यकार्य्याणि नीति न्यायेन संमतः।
जयं प्राप्नोति संग्रामे यः सुकार्य्याण्यनुष्ठते॥

संसार-विहारी प्रत्येक मनुष्यको चाहिये, कि वह अपने काम सदा नीति और न्याय द्वारा अनुमोदन प्राप्त करके करे। नीति और न्याय-सम्मत कार्य्य करनेसे ही जीवन संग्राममें विजय प्राप्त होती है।

* समाप्त *

श्रीकृष्ण

सम्पूर्ण ७ अध्यायोंमें

श्रीकृष्ण-जीवन आदर्शकी खान, कर्म्मयोगका उपदेशक, कर्म धर्म्मकी शिक्षाका भण्डार, धर्म्मका पूर्णतत्व समझानेवाला, ज्ञान गरिमाको बढ़ानेवाला और भव सागरकी भयपूर्ण तरंगोंसे बचानेवाला है। इसीलिये बड़ी ही सरल, सुन्दर और सुबोध भाषामें यह पुस्तक, बड़ी सजधजसे प्रकाशित की गयी है। इसमें श्रीकृष्ण जीवनकी समस्त घटनायें, बकासुर, अघ, कालीयनाग प्रभृति दुर्द्दान्त दानवोंके दलनकी सम्पूर्ण कथायें, ब्रजमण्डलके प्रेम-धारा प्रवाहकी समस्त लीलायें, महाभारतके समयके उनके समस्त राजनीतिपूर्ण कार्य, गीताका मोहनाशक महोपदेश प्रभृति सभी बातें विशद रूपसे लिखी गयी हैं। साथ ही श्रीकृष्ण जीवनपर अन्यान्य विचारवान और विद्वानोंने जो कुछ सम्मति दी है, वह भी इसमें सम्मिलित कर दी गयी है। इसीलिये हम जोर देकर कह सकते हैं, कि भारतीय किसी भाषामें भी इस जोड़का ग्रन्थ नहीं है और प्रत्येक भारतवासीको एकबार इसे अवश्य अवश्य पढ़ना चाहिये। २७ चित्रोंसे सुशोभित बेजिल्द पुस्तकका मूल्य ४॥।) श्रीकृष्ण मूर्त्तिसे सुशोभित दर्शनीय सुनहरी रेशमी जिल्दका ५।)

हिन्दी साहित्य सम्राट् "श्रीमान पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी" ने अपने पोस्ट कार्ड ता० ७-९-२२ में लिखा है :—इसे मैं बड़े प्रेम और बड़े आदरसे अपने संग्रहमें रखूंगा। पुस्तक बड़ी सुन्दर छपी है, जिल्दका तो कहना ही क्या है। चित्रोंने पुस्तककी महत्ताको बढ़ा दिया है। विषय योजना भी अच्छी है..............

पता—आर० डी० बाहिती एण्ड कम्पनी, ४, चोरबगान, कलकत्ता